ग्राम्या

श्री सुमित्रानंदन पंत

लोकभारती प्रकाशन
१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-१

लोकभारती प्रकाशन
१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित

●

नवाँ संस्करण
१९७७ ई०

●

मूल्य : छः रुपये

●

सुपरफाइन प्रिंटर्स
१-सी, बाई का बाग, इलाहाबाद-३
द्वारा मुद्रित

प्रिय नरेन्द्र को

निवेदन

ग्राम्या में मेरी युगवाणी के बाद की रचनाएँ संग्रहीत हैं। इनमें पाठको को ग्रामीणो के प्रति केवल बौद्धिक सहानुभूति ही मिल सकती है। ग्राम्य जीवन मे मिलकर, उसके भीतर से, ये अवश्य नही लिखी गई है। ग्रामो की वर्तमान दशा में वैसा करना केवल प्रतिक्रियात्मक साहित्य को जन्म देना होता। 'युग', 'संस्कृति' आदि शब्द इन रचनाओ में वर्तमान और भविष्य दोनो के लिए प्रयुक्त हुए है, जिसे समझने में पाठको को कठिनाई नही होगी; ग्राम्या की पहिली कविता 'स्वप्न पट' से यह बात स्पष्ट हो जाती है। 'बापू' और 'महात्मा जी के प्रति', 'चरखा गीत' और 'सूत्रधर' जैसी कुछ कविताओ में बाहरी दृष्टि से एक विचार-वैषम्य जान पडता है, पर यदि हम 'आज' और 'कल' दोनों को देखेंगे तो वह विरोध नही रहेगा।

अंत में मेरा निवेदन है कि ग्राम्या मे ग्राम्य दोषो का होना अत्यन्त स्वाभाविक है, सहृदय पाठक उनसे विचलित न हो।

नक्षत्र
कालाकाँकर (अवध)
१ मार्च, १९४० ई०

—सुमित्रानंदन पंत

अनुक्रम

●

स्वप्न पट	..	११
ग्राम कवि	....	१३
ग्राम	.	१४
ग्राम दृष्टि	..	१५
ग्राम चित्र	. .	१६
ग्राम युवती	....	१७
ग्राम नारी	....	२०
कठपुतले	....	२२
वे आँखें	. .	२४
गाँव के लडके	. .	२७
वह बुड्ढा	. ..	२९
धोबियो का नृत्य	....	३१
ग्राम वधू	...	३३
ग्राम श्री	....	३५
नहान	....	३९
गंगा	....	४२
चमारों का नाच	...	४४
कहारो का रुद्र नृत्य	...	४७
भारत माता	.. .	४८
चरखा गीत	...	५०
महात्मा जी के प्रति	....	५२
राष्ट्र गान	..	५४
ग्राम देवता	....	५७
संध्या के बाद	....	६३
खिडकी से	....	६८

रेखाचित्र	...	७१
दिवा स्वप्न	...	७३
सौन्दर्य कला	..	७६
स्वीट पी के प्रति	.	७८
कला के प्रति	.	८१
स्त्री	.	८२
आधुनिका	....	८३
मजदूरनी के प्रति	....	८४
नारी	...	८५
द्वन्द्व प्रणय	..	८६
१९४०	....	८७
सूत्रधर	..	८८
सस्कृति का प्रश्न	...	८९
सास्कृतिक हृदय	...	९०
भारत ग्राम	....	९१
स्वप्न और सत्य	..	९३
बापू !	...	९५
अहिंसा	..	९६
पतझर	.	९७
उद्बोधन	.	९९
नव इद्रिय	....	१०१
कवि किसान	...	१०२
वाणी !	....	१०३
नक्षत्र		१०४
आँगन से	....	१०५
याद	..	१०६
गुलदावदी	. .	१०७
विनय	...	१०८

स्वप्न पट

ग्राम नही वे ग्राम आज
औ' नगर न नगर जनाऽकर,
मानव कर से निखिल प्रकृति जग
संस्कृत, सार्थक, सुदर।

देश राष्ट्र वे नही,
जीर्ण जग पतझर त्रास समापन,
नील गगन है हरित धरा :
नव युग : नव मानव जीवन।

आज मिट गये दैन्य दुःख,
सब क्षुधा तृषा के क्रदन
भावी स्वप्नों के पट पर
युग जीवन करता नर्तन।

डूब गये सब तर्क वाद,
सब देशो राष्ट्रों के रण;
डूब गया रव घोर क्रांति का,
शांत विश्व संघर्षण।

जाति वर्ण की, श्रेणि वर्ग की
तोड भित्तियाँ दुर्धर
युग युग के बंदीगृह से
मानवता निकली बाहर।

नाच रहे रवि शशि,
दिगंत में,—नाच रहे ग्रह उडुगण,
नाच रहा भूगोल,
नाचते नर नारी हर्षित मन!

फुल्ल रक्त शतदल पर शोभित
युग लक्ष्मी लोकोज्ज्वल
अयुत करों से लुटा रही
जन हित, जन बल, जन मगल!

ग्राम नही वे, नगर नही वे,—
मुक्त दिशा औ' क्षण से
जीवन की क्षुद्रता निखिल
मिट गई मनुज जीवन से।

दिसंबर '३९]

ग्राम कवि

यहाँ न पल्लव वन में मर्मर,
यहाँ न मधु विहगों मे गुजन,
जोवन का संगीत बन रहा
यहाँ अतृप्त हृदय का रोदन।

यहाँ नही शब्दों में बँधती
आदर्शो की प्रतिमा जीवित,
यहाँ व्यर्थ है चित्र गीत में
सुदरता को करना सचित।

यहाँ धरा का मुख कुरूप है,
कुत्सित गर्हित जन का जोवन,
सुदरता का मूल्य वहाँ क्या
जहाँ उदर है क्षुब्ध, नग्न तन ?—

जहाँ दैन्य जर्जर असख्य जन
पशु-जघन्य क्षण करते यापन,
कीड़ों-से रेंगते मनुज शिशु,
जहाँ अकाल वृद्ध है यौवन।

सुलभ यहाँ रे कवि को जग मे
युग का नही सत्य शिव सुदर,
कँप कँप उठते उसके उर की
व्यथा विमूर्छित वीणा के स्वर!

दिसम्बर '३९]

ग्राम

बृहद् ग्रंथ मानव जीवन का, काल ध्वस से कवलित,
ग्राम आज है पृष्ठ जनों की करुण कथा का जीवित !
युग युग का इतिहास सभ्यताओं का इसमें संचित,
संस्कृतियो की ह्रास वृद्धि जन शोषण से रेखाकित !

हिस्र विजेताओ, भूपो के आक्रमणो की निर्दय,
जीर्ण हस्तलिपि यह नृशस गृह संघर्षो की निश्चय !
धर्मो का उत्पात, जातियो, वर्गो का उत्पीड़न,
इसमें चिर सकलित रूढि, विश्वास, विचार सनातन !
घर घर के बिखरे पन्नो मे नग्न, क्षुधार्त कहानी,
जन मन के दयनीय भाव कर सकती प्रकट न वाणी !
मानव दुर्गति की गाथा से ओतप्रोत मर्मांतक
सदियो के अत्याचारों की सूची यह रोमाचक !

मनुष्यत्व के मूलतत्त्व ग्रामों ही मे अंतर्हित,
उपादान भावी संस्कृति के भरे यहाँ है अविकृत !
शिक्षा के सत्याभासो से ग्राम नही हैं पीड़ित,
जीवन के सस्कार अविद्या-तम मे जन के रक्षित !

जनवरी '४०]

ग्राम दृष्टि

देख रहा हूँ आज विश्व को मै ग्रामीण नयन से
सोच रहा हूँ जटिल जगत पर, जीवन पर जन मन से !

ज्ञान नही है, तर्क नही है, कला न भाव विवेचन,
जन हैं, जग है, क्षुधा, काम, इच्छाएँ, जीवन साधन।

रूप जगत् है, रूप दृष्टि है, रूप बोधमय है मन,
माता पिता, बंधु, बांधव, परिजन पूरजन, भू गो धन !

रूढि रीतियो के प्रचलित पथ, जाति पाँति के बधन,
नियत कर्म हैं, नियत कर्म फल,—जीवन चक्र सनातन !

जन्म मरण के, सुख दुख के ताने बानों का जीवन,
निठुर नियति के धूपछाँह जग का रहस्य है गोपन !

देख रहा हूँ निखिल विश्व को मै ग्रामीण नयन से,
सोच रहा हूँ जग पर, मानव जीवन पर जन मन से।

रूढ़ि नही है, रीति नही है, जातिवर्ण केवल भ्रम,
जन जन में है जीव, जीव-जीवन मे सब जन है सम !

ज्ञान वृथा है, तर्क वृथा, संस्कृतियाँ व्यर्थ पुरातन,
प्रथम जीव है मानव मे, पीछे है सामाजिक जन !

मनुष्यत्व के मान वृथा, विज्ञान वृथा रे दर्शन,
वृथा धर्म, गणतंत्र,—उन्हे यदि प्रिय न जीव जन जीवन !

दिसम्बर '३९]

ग्राम चित्र

यहाँ नही है चहल पहल वैभव विस्मित जीवन की,
यहाँ डोलती वायु म्लान सौरभ मर्मर ले वन की!
आता मौन प्रभात अकेला, सध्या भरी उदासी,
यहाँ घूमती दोपहरी मे स्वप्नो की छाया सी!
यहाँ नही विद्युत् दीपों का दिवस निशा मे निर्मित,
अँधियाली में रहती गहरी अँधियाली भय-कल्पित!
यहाँ खर्व नर (वानर ?) रहते युग युग से अभिशापित,
अन्न वस्त्र पीड़ित असभ्य, निर्बुद्धि, पंक में पालित!
यह तो मानव लोक नही रे, यह है नरक अपरिचित,
यह भारत का ग्राम,—सभ्यता, सस्कृति से निर्वासित!
झाड फूंस के विवर,—यही क्या जीवन शिल्पी के घर?
कीडों-से रेगते कौन ये? बुद्धि प्राण नारी नर?
अकथनीय क्षुद्रता, विवशता भरी यहाँ के जग में,
गृह-गृह में है कलह, खेत में कलह, कलह है मग में?
यह रवि शशि का लोक,—जहाँ हँसते समूह में उडुगण,
जहाँ चहकते विहग, बदलते क्षण क्षण विद्युत् प्रभ घन!
यहाँ वनस्पति रहते, रहती खेतों की हरियाली,
यहाँ फूल हैं, यहाँ ओस, कोकिला, आम की डाली!
ये रहते है यहाँ,—और नीला नभ, बोई धरती,
सूरज का चौडा प्रकाश, ज्योत्स्ना चुपचाप विचरती!
प्रकृति धाम यह : तृण तृण, कण कण जहाँ प्रफुल्लित जीवित,
यहाँ अकेला मानव ही रे चिर विषण्ण जीवन-मृत!!

दिसम्बर '३९]

ग्राम युवती

उन्मद यौवन से उभर
घटा सी नव असाढ़ की सुन्दर
अति श्याम वरण,
श्लथ, मद चरण,
इठलाती आती ग्राम युवति
वह गजगति
सर्प डगर पर।

सरकाती पट,
खिसकाती लट,—
शरमाती झट
वह नमित दृष्टि से देख उरोजों के युग घट!
हँसती खलखल
अबला चंचल
ज्यों फूट पड़ा हो स्रोत सरल
भर फेनोज्ज्वल दशनों से अधरों के तट!

वह मग मे रुक
मानो कुछ झुक,
आँचल सँभालती, फेर नयन मुख,
पा प्रिय पद की आहट;
आ ग्राम युवक,
प्रेमी याचक
जब उसे ताकता है इकटक,

उल्लसित,
चकित,
वह लेती मूँद पलक पट!

पनघट पर
मोहित नारी नर!—
जब जल से भर
भारी गागर
खीचती उबहनी वह, बरबस
चोली से उभर उभर कसमस
खिंचते सँग युग रस भरे कलश;—
जल छलकाती,
रस बरसाती,
बल खाती वह घर को जाती,
सिर पर घट
उर पर धर पट!

कानों मे गुड़हल
खोंस,—धवल
या कुँई, कनेर, लोध पाटल,
वह हरसिगार से कच सँवार,
मृदु मौलसिरी के गूँथ हार,
गउओं सँग करती वन विहार,
पिक चातक के सँग दे पुकार,—
वह कुंद, काँस से,
अमलतास से,

आम्र मोर, सहजन, पलाश से,
निर्जन मे सज ऋतु सिंगार !
तन पर यौवन सुषमाशाली
मुख पर श्रमकण, रवि की लाली,
सिर पर धर स्वर्ण शस्य डाली,
वह मेड़ो पर आती जाती,
उरु मटकाती,
कटि लचकाती
चिर वर्षातप हिम की पाली
धनि श्याम वरण,
अति क्षिप्र चरण,
अधरों से धरे पकी बाली !

रे दो दिन का
उसका यौवन !
सपना छिन का
रहता न स्मरण !
दुःखों से पिस,
दुर्दिन मे घिस,
जर्जर हो जाता उसका तन !
ढह जाता असमय यौवन धन !
बह जाता तट का तिनका
जो लहरों से हँस खेला कुछ क्षण ! !

दिसंबर '३६]

ग्राम नारी

स्वाभाविक नारी जन की लज्जा से वेष्टित,
नित कर्म निष्ठ, अंगों की हृष्ट पुष्ट सुन्दर,
श्रम से है जिसके क्षुधा काम चिर मर्यादित,
वह स्वस्थ ग्राम नारी, नर की जीवन सहचर!

वह शोभा पात्र नही कुसुमादपि मृदुल गात्र,
वह नैसर्गिक जीवन सस्कारों से चालित;
सत्याभासो में पली न छाया मूर्ति मात्र;
जीवन रण में सक्षम, संघर्षों से शिक्षित!

वह वर्ग नारियों सी न सुज्ञ, संस्कृत, कृत्रिम,
रजित कपोल भ्रू अधर, अग सुरभित वासित;
छाया प्रकाश की सृष्टि,—उसे सम ऊष्मा हिम,
वह नही कुलों की काम वदिनी अभिशापित!

स्थिर, स्नेह स्निग्ध है उसका उज्ज्वल दृष्टिपात,
वह द्वन्द्व ग्रंथि से मुक्त मानवी है प्राकृत,
नागरियों का नट रंग प्रणय उसको न ज्ञात,
सम्मोहन, विभ्रम, अग भंगिमा में अपठित!

उसमे यत्नो से रक्षित, वैभव से पोषित
सौन्दर्य मधुरिमा नही, न शोभा सौकुमार्य,
वह नही स्वप्नशायिनी प्रेयसी ही परिचित
वह नर की सहधर्मिणी, सदा प्रिय जिसे काय

पिक चातक की मादक पुकार से उसका मन
हो उठता नही प्रणय स्मृतियों से आदोलित,
चिर क्षुधा शीत की चीत्कारें, दुख का क्रन्दन
जीवन के पथ से उसे नही करते विचलित !

है मांस पेशियों मे उसके दृढ कोमलता,
संयोग अवयवों मे, अश्लथ उसके उरोज,
कृत्रिम रति की है नही हृदय मे आकुलता,
उद्दीप्त न करता उसे भाव कल्पित मनोज !

वह स्नेह, शील, सेवा, ममता की मधुर मूर्ति,
यद्यपि चिर दैन्य, अविद्या के तम से पीड़ित,
कर रही मानवी के अभाव की आज पूर्ति
अग्रजा नागरी की,—यह ग्राम वधू निश्चित !

दिसंबर '३९]

कठपुतले

ये जीवित है या जीवन्मृत।
या किसी काल विष से मूर्छित?
ये मनुजाकृति ग्रामिक अगणित!
स्थावर, विषण्ण, जड़वत् स्तभित।

किस महारात्रि तम मे निद्रित
ये प्रेत?—स्वप्नवत् संचालित
किस मोह मंत्र से रे कीलित
ये दैव दग्ध, जग के पीड़ित।।

बाम्हन, ठाकुर लाला, कहार,
कुर्मी, अहीर, बारी, कुम्हार,
नाइ, कोरी, पासी, चमार,
शोषित किसान या ज़मीदार,—

ये है खाते पीते, रहते,
चलते फिरते, रोते हँसते,
लड़ते मिलते, सोते जगते,
आनंद, नृत्य, उत्सव करते,—

पर जैसे कठपुतले निर्मित,
छल प्रतिमाएँ भूषित सज्जित।
युग युग की प्रेतात्मा अविदित,
इनकी गति विधि करती यंत्रित!

ये छाया तन, ये माया जन,
विश्वास मूढ़ नर नारी गण,
चिर रूढि रीतियों के गोपन
सूत्रों मे बँध करते नर्तन!

पा गत सस्कारों के इंगित
ये क्रियाचार करते निश्चित,
कल्पित स्वर में मुखरित, स्पदित
क्षण भर को ज्यों लगते जीवित!

ये मनुज नही है रे जागृत
जिनका उर भावों से दोलित,
जिनमें महदाकाक्षाएँ नित
होती समुद्र सी आलोडित!

जो बुद्धिप्राण, करते चिन्तन,
तत्त्वान्वेषण, सत्यालोचन,
जो जीवन शिल्पी चिर शोभन
सचारित करते भव जीवन!

ये दारु मूर्तियाँ हैं चित्रित,
जो घोर अविद्या में मोहित;
ये मानव नही, जीव शापित,
चेतना विहीन, आत्म विस्मृत!

वे आँखें

अंधकार की गुहा सरीखी
उन आँखों से डरता है मन,
भरा दूर तक उनमें दारुण
दैन्य दुःख का नीरव रोदन !
अह, अथाह नैराश्य, विवशता का
उनमे भीषण सूनापन,
मानव के पाशव पीडन का
देती वे निर्मम विज्ञापन !

फूट रहा उनसे गहरा आतक,
क्षोभ, शोषण, सशय, भ्रम,
डूब कालिमा मे उनकी
कँपता मन, उनमें मरघट का तम !
ग्रस लेती दर्शक को वह
दुर्ज्ञेय दया की भूखी चितवन,
झूल रहा उस छाया-पट में
युग युग का जर्जर जन जीवन !

वह स्वाधीन किसान रहा,
अभिमान भरा आँखों मे इसका,
छोड़ उसे मझधार आज
संसार कगार सदृश वह खिसका !
लहराते वे खेत दृगों में
हुआ बेदखल वह अब जिन से,

हँसती थी उसके जीवन की
हरियाली जिनके तृन तृन से!

आँखों ही में घूमा करता
वह उसकी आँखों का तारा,
कारकुनों की लाठी से जो
गया जवानी ही में मारा!
बिका दिया घर द्वार,
महाजन ने न ब्याज की कौड़ी छोड़ी,
रह रह आँखों में चुभती वह
कुर्क हुई बरधों की जोड़ी!

उजरी उसके सिवा किसे कब
पास दुहाने आने देती?
अह, आँखों मे नाचा करती
उजड़ गई जो सुख की खेती!
बिना दवा दर्पन के घरनी
स्वरग चली,—आँखें आती भर,
देख रेख के बिना दुधमुँही
बिटिया दो दिन बाद गई मर!

घर में विधवा रही पतोहू,
लछमी थी, यद्यपि पति घातिन,
पकड़ मँगाया कोतवाल ने,
डूब कुएँ में मरी एक दिन!
खैर, पैर की जूती, जोरू
न सही एक, दूसरी आती,

पर जवान लड़के की सुध कर
साँप लोटते, फटती छाती !

पिछले सुख की स्मृति आँखों में
क्षण भर एक चमक है लाती,
तुरत शून्य मे गड़ वह चितवन
तीखो नोक सदृश बन जाती !
मानव की चेतना न ममता
रहती तब आँखों में उस क्षण !
हर्ष शोक अपमान, ग्लानि,
दुख दैन्य न जीवन का आकर्षण

उस अवचेतन क्षण में मानो
वे सुदूर करती अवलोकन
ज्योति तमस के परदों पर
युग जीवन के पट का परिवर्तन !
अंधकार की अतल गुहा सी
अह, उन आँखों से डरता मन,
वर्ग सभ्यता के मंदिर के
निचले तल की वे वातायन !

जनवरी '४०]

गाँव के लड़के

मिट्टी से भी मटमैले तन,
अधफटे, कुचैले, जीर्ण वसन,—
ज्यों मिट्टी के हो बने हुए
ये गँवई लड़के—भू के धन !

कोई खंडित, कोई कुंठित,
कृश बाहु, पसलियाँ रेखांकित,
टहनी सी टाँगे, बढ़ा पेट
टेढ़े मेढे, विकलांग घृणित !

विज्ञान चिकित्सा से वंचित,
ये नही धात्रियों से रक्षित,
ज्यों स्वास्थ्य सेज हो, ये सुख से
लोटते धूल में चिर परिचित !

पशुओं सी भीत मूक चितवन,
प्राकृतिक स्फूर्त्ति से प्रेरित मन,
तृण तरुओं-से उग-बढ़, झर-गिर,
ये ढोते जीवन क्रम के क्षण !

कुल मान न करना इन्हे वहन,
चेतना ज्ञान से नही गहन,
जग जीवन धारा में बहते
ये मूक, पंगु बालू के कण !

कर्दम मे पोषित जन्मजात,
जीवन ऐश्वर्य न इन्हे ज्ञात,
ये सुखी या दुखी ? पशुओं-से
जो सोते जगते साँझ प्रात !

इन कीड़ों का भी मनुज बीज,
यह सोच हृदय उठता पसीज,
मानव प्रति मानव की विरक्ति
उपजाती मन में क्षोभ खीझ !

फरवरी '४०]

वह बुड्ढा

खड़ा द्वार पर लाठी टेके,
वह जीवन का बूढा पंजर,
चिमटी उसकी सिकुडी चमड़ी
हिलते हड्डी के ढाँचे पर।

उभरी ढीली नसें जाल सी
सूखी ठठरी से हैं लिपटी,
पतझर मे ठूँठे तरु से ज्यो
सूनी अमरबेल हो चिपटी।

उसका लबा डील डौल है,
हट्टी कट्टी काठी चौड़ी,
इस खँडहर मे बिजली सी
उन्मत्त जवानी होगी दौड़ी।

बैठी छाती की हड्डी अब,
झुकी रीढ कमठा सी टेढी,
पिचका पेट, गढे कन्धों पर,
फटी बिवाई से है एड़ी!

बैठ, टेक धरती पर माथा,
वह सलाम करता है झुककर,
उस धरती से पाँव उठा लेने को
जी करता है क्षण भर!

घुटनों से मुड उसकी लबी
टाँगे जाँघें सटी परस्पर,
झुका बीच मे शीश, झुर्रियों का
झाँझर मुख निकला बाहर!

हाथ जोड, चौडे पजों की
गुँथी अँगुलियो को कर सम्मुख,
मौन त्रस्त चितवन से,
कातर वाणी से वह कहता निज दुख!

गर्मी के दिन, धरे उपरनी सिर पर,
लुगी से ढाँपे तन,—
नंगी देह भरी बालो से,—
वन मानुस सा लगता वह जन!

भूखा है: पैसे पा, कुछ गुनमुना,
खडा हो, जाता वह घर,
पिछले पैरों के बल उठ
जैसे कोई चल रहा जानवर!

काली नारकीय छाया निज
छोड गया वह मेरे भीतर,
पैशाचिक सा कुछ: दुःखों से
मनुज गया शायद उसमे मर!

जनवरी '४०]

धोबियों का नृत्य

लो, छन छन, छन छन,
छन छन, छन छन,
नाच गुजरिया हरती मन!

धनि के पैरों में घुँघरू कल,
नट की कटि मे घटियाँ तरल,
वह फिरकी सी फिरती चचल,
नट की कटि खाती सौ सौ बल,

लो, छन छन, छन छन,
छन छन, छन छन,
ठुमुक गुजरिया हरती मन!

उड़ रहा ढोल धाधिन, धातिन,
औ, हुडुक घुडुकता ढिम ढिम ढिन,
मंजीर खनकते खिन खिन खिन,
मद मस्त रजक, होली का दिन,

लो, छन छन, छन छन,
छन छन, छन छन,
थिरक गुजरिया हरती मन!

वह काम शिखा सी रही सि
नट की कटि में लालसा भ

कँप कँप नितब उसके थर् थर्
भर रहे घटियों में रति स्वर,

लो, छन छन, छन छन,
छन छन, छन छन,
मत्त गुजरिया हरती मन !

फहराता लँहगा लहर लहर,
उड़ रही ओढनी फर् फर् फर्,
चोली के कदुक रहे उघर,
(स्त्री नही गुर्जरिया, वह है नर !)

लो, छन छन, छन छन,
छन छन, छन छन,
हुलस गुजरिया हरती मन !

उर की अतृप्त वासना उभर
इस ढोल मँजीरे के स्वर पर
नाचती, गान के फैला पर,
प्रिय जन गण को उत्सव अवसर,—

लो, छन छन, छन छन,
छन छन, छन छन,
चतुर गुजरिया हरती मन !

जनवरी '४०]

ग्राम वधू

जाती ग्राम वधू पति के घर!
मा से मिल, गोदी पर सिर धर,
गा गा बिटिया रोती जी भर,
जन जन का मन करुणा कातर,
जाती ग्राम वधू पति के घर!

भीड़ लग गई लो स्टेशन पर,
सुन यात्री ऊँचा रोदन स्वर
झाँक रहे खिड़की से बाहर,
जाती ग्राम वधू पति के घर!

चिन्तातुर सब, कौन गया मर,
पहियों से दब, कट पटरी पर,
पुलिस कर रही कहीं पकड़-धर!
जाती ग्राम वधू पति के घर।

मिलती ताई से गा रोकर,
मौसी से वह आपा खोकर,
बारी बारी रो, चुप होकर,
जाती ग्राम वधू पति के घर!

बिदा फुआ से ले हाहाकर,
सखियों से रो धो बतिया कर,
पड़ोसिनों पर टूट, रँभा कर,
जाती ग्राम वधू पति के घर!

मा कहती,—रखना सँभाल घर,
मौसी,—धनि, लाना गोदी भर,
सखियाँ,—जाना हमें मत बिसर,
जाती ग्राम वधू पति के घर।

नहीं आँसुओं से आँचल तर,
जन बिछोह से हृदय न कातर,
रोती वह, रोने का अवसर,
जाती ग्राम वधू पति के घर!

लो, अब गाडी चल दी भर् भर्,
बतलाती धनि पति से हँस कर
सुस्थिर डिब्बे के नारी नर,
जाती ग्राम वधू पति के घर!

रोना गाना यहाँ चलन भर,
आता उसमें उभर न अन्तर,
रूढ़ि यंत्र जन जीवन परिकर,
जाती ग्राम वधू पति के घर!

जनवरी '४०]

ग्राम श्री

फैली खेतो में दूर तलक
मखमल की कोमल हरियाली,
लिपटी जिससे रवि की किरणे
चाँदी की सी उजली जाली!
तिनको के हरे हरे तन पर
हिल हरित रुधिर है रहा झलक,
श्यामल भू तल पर झुका हुआ
नभ का चिर निर्मल नील फलक!

रोमांचित सी लगती वसुधा
आई जौ गेहूँ मे बाली,
अरहर सनई की सोने की
किंकिणियाँ है शोभाशाली!
उड़ती भीनी तैलाक्त गध
फूली सरसों पीली पीली,
लो, हरित धरा से झाँक रही
नीलम की कलि, तीसी नीली!

रँग रँग के फूलों में रिलमिल
हँस रही संखियाँ मटर खड़ी,
मखमली पेटियों सी लटकीं
छीमियाँ, छिपाये बीज लड़ी!
फिरती है रँग रँग की तितली
रँग रँग के फूलों पर सुन्दर,
फूले फिरते हों फूल स्वयं
उड़ उड वृंतों से वृंतों पर!

अब रजत स्वर्ण मंजरियों से
लद गई आम्र तरु की डाली,
झर रहे ढाँक, पीपल के दल,
हो उठी कोकिला मतवाली!
महके कटहल, मुकुलित जामुन,
जगल मे झरबेरी झूली,
फूले आड़ू, नीबू, दाड़िम,
आलू, गोभी, बैगन, मूली!

पीले मीठे अमरूदों मे
अब लाल लाल चित्तियाँ पड़ी,
पक गये सुनहले मधुर बेर,
अँवली से तरु की डाल जडी!
लहलह पालक, महमह धनिया,
लौकी औ' सेम फली, फैली
मखमली टमाटर हुए लाल,
मिरचों की बडी हरी थैली!

गंजी को मार गया पाला,
अरहर के फूलों को झुलसा,
हाँका करती दिन भर बंदर
अब मालिन की लड़की तुलसा!
बालाएँ गजरा काट काट,
कुछ कह गुपचुप हँसती किन किन,
चाँदी की सी घंटियाँ तरल
बजती रहती रह रह खिन खिन!

छायातप के हिलकोरों में
चौडी हरीतिमा लहराती,

ईखो के खेतों पर सफेद
काँसों की झडी फहराती;
ऊँची अरहर में लुका-छिपी
खेलतीं युवतियाँ मदमाती,
चुबन पा प्रेमी युवकों के
श्रम से श्लथ जीवन बहलाती।

बगिया के छोटे पेड़ों पर
सुदर लगते छोटे छाजन,
सुदर गेहूँ की बालों पर
मोती के दानो-से हिमकन;
प्रातः ओझल हो जाता जग,
भू पर आता ज्यों उतर गगन,
सुदर लगते फिर कुहरे से
उठते-से खेत, बाग, गृह, वन!

बालू के साँपों से अंकित
गगा की सतरंगी रेती
सुदर लगती सरपत छाई
तट पर तरबूजों की खेती;
अँगुली की कघी से बगुले
कलँगी सँवारते है कोई,
तिरते जल मे सुरखाब, पुलिन पर
मगरौठी रहती सोई!

डुबकियाँ लगाते सामुद्रिक,
धोती पीली चोंचे धोबिन,
उड़ अबाबील, टिटिहरी, बया
चाहा चुगते कर्दम, कृमि, तृन!

नीले नभ में पीलो के दल
आतप में धीरे मँडराते ;
रह रह काले, भूरे सुफेद
पखों में रँग आते जाते !

लटके तरुओ पर विहग नीड
वनचर लडकों को हुए ज्ञात,
रेखा-छवि विरल टहनियों की
ठूँठे तरुओ के नग्न गात !
आँगन मे दौड़ रहे पत्ते
घूमती भँवर सी शिशिर वात,
बदली छँटने पर लगती प्रिय
ऋतुमती धरित्री सद्य स्नात ।

हँसमुख हरियाली हिम-आतप
सुख से अलसाए-से सोए,
भीगी अँधियाली मे निशि की
तारक स्वप्नो में-से खोए,—
मरकत डिब्बे सा खुला ग्राम—
जिस पर नीलम नभ आच्छादन,—
निरुपम हिमांत में स्निग्ध शात
निज शोभा से हरता जन मन !

फरवरी '४०]

नहान

जन पर्व मकर संक्रांति आज
उमड़ा नहान को जन समाज
गंगा तट पर सब छोड़ काज!

नारी नर कई कोस पैदल
आ रहे चले लो, दल के दल
गंगा दर्शन को पुण्योज्वल!

लड़के, बच्चे, बूढ़े, जवान,
रोगी, भोगी, छोटे, महान,
क्षेत्रपति, महाजन औ' किसान!

दादा, नानी, चाचा, ताई,
मौसा, फूफी, मामा, माई,
मिल ससुर, बहू, भावज, भाई!

गा रही स्त्रियाँ मगल कीर्तन,
भर रहे तान नव युवक मगन
हँसते, बतलाते बालक गण!

अतलस, सिंगी, केला औ' सन
गोटे गोखुरू टँगे,—स्त्री जन
पहनी छींटे, फुलवर, साटन!

बहु काले, लाल, हरे, नीले
बैगनी, गुलाबी, पट पीले,
रँग रँग के हलके, चटकीले!

सिर पर है चँदवा शीशफूल,
कानों में झुमके रहे झूल,
बिरिया, गलचुमनी, कर्णफूल !

माथे के टीके पर जन मन,
नासा में नथिया, फुलिया, कन,
बेसर, बुलाक, झुलनी, लटकन !

गल मे कटवा, कंठा, हँसली,
उर में हुमेल कल चपकली,
जुगनी, चौकी, मूँगे नकली !

बाहों में बहु बहुँटे, जोशन,
बाजूबँद, पट्टी, बाँक सुषम,
गहने ही गँवारिनो के धन !

कँगने, पहुँची, मृदु पहुँचों पर,
पिछला, मँझुवा अगला क्रमतर
चूड़ियाँ फूल की मठियाँ वर !

हथफूल पीठ पर कर के धर,
उँगलियाँ मुँदरियों से सब भर,
आरसी अँगूठे मे देकर—

वे कटि में चल करधनी पहन,
पाँवों में पायजेब, झाँझन,
बहु छड़े, कड़े, बिछिया शोभन,—

यों सोने चाँदी से झंकृत,
जाती वे पीतल गिलट खचित,
बहु भाँति गोदना से चित्रित।

ये शत, सहस्र नर नारी जन
लगते प्रहृष्ट सब, मुक्त, प्रमन,
है आज न नित्य कर्म बंधन।

विश्वास मूढ, निःसंशय मन,
करने आये ये पुण्यार्जन,
युग युग से मार्ग भ्रष्ट जनगण।

इनमें विश्वास अगाध, अटल,
इनको चाहिए प्रकाश नवल,
भर सके नया जो इनमें बल।

ये छोटी बस्ती में कुछ क्षण
भर गए आज जीवन स्पंदन,—
प्रिय लगता जनगण सम्मेलन।

फरवरी '४०]

गंगा

अब आधा जल निश्चल, पीला,
आधा जल चंचल औ' नीला,—
गीले तन पर मृदु संध्यातप
सिमटा रेशम पट सा ढीला।

....

ऐसे सोने के साँझ प्रात,
ऐसे चाँदी के दिवस रात,
ले जाती बहा कहाँ गंगा
जीवन के युग क्षण,—किसे ज्ञात!

विश्रुत हिम पर्वत से निर्गत,
किरणोज्वल चल कल ऊर्मि निरत,
यमुना, गोमती आदि से मिल
होती यह सागर में परिणत!

यह भौगोलिक गंगा परिचित,
जिसके तट पर बहु नगर प्रथित,
इस जड़ गंगा से मिली हुई
जन गंगा एक और जीवित!

वह विष्णुपदी, शिव मौलि स्नुता,
वह भीष्म प्रसू औ' जह्नु सुता,
वह देव निम्नगा, स्वर्गंगा,
वह सगर पुत्र तारिणी श्रुता!

वह गगा यह केवल छाया,
वह लोक चेतना, यह माया,
वह आत्म वाहिनी ज्योति सरी,
यह भू पतिता, कचुक काया !

वह गगा जन मन से नि.सृत,
जिसमे बहु बुदबुद युग नर्तित,
वह आज तरगित, संसृति के
मृत सैकत को करने प्लावित !

दिशि दिशि का जन मत वाहित कर,
वह बनी अकूल अतल सागर,
भर देगी दिशि पल पुलिनों में
वह नव जीवन की रज उर्वर !

....   ..

अब नभ पर रेखा शशि शोभित,
गंगा का जल श्यामल, कंपित
लहरो पर चॉदी की किरणे
करती प्रकाशमय कुछ अंकित !

फरवरी '४०]

चमारों का नाच

अररर
मचा खूब हुल्लड़ हुडदंग,
घमक घमाघम रहा मृदंग,
उछल कूद, बकवाद झड़प मे
खेल रही खुल हृदय उमंग
यह चमार चौदस का ढंग !

ठनक कसावर रहा ठनाठन,
थिरक चमारिन रही छनाछन,
झूम झूम बाँसुरी करिंगा
बजा रहा, बेसुध सब हरिजन
गीत नृत्य के संग है प्रहसन !

मजलिस का मसखरा कारगा
बना हुआ है रंग विरंगा,
भरे चिरकुटो से वह सारी
देह, हँसाता खूब लफगा,
स्वाँग युद्ध का रच बेढगा !

बँधा चाम का तवा पीठ पर
पहुँचे पर बद्धी का हंटर,
लिये हाथ में ढाल, टेड़ही
दुमुँहा सी बलखाई सुन्दर—
इतराता वह बन मुरलीधर !

ज़मींदार पर फबती कसता,
बाम्हन ठाकुर पर है हँसता,
बातों मे वक्रोक्ति काकु औ'
श्लेष बोल जाता वह सस्ता,
कल काँटा को कह कलकत्ता !

घमासान हो रहा है समर,
उसे बुलाने आए अफसर,
गोला फट कर आँख उडा दे
छिपा हुआ वह, उसे यही डर,
खौफ़ न मरने का रत्ती भर !

'काका' उसका है साथी नट,
गदके उस पर जमा पटापट,
उसे टोकता—'गोली खाकर
आँख जायगी क्यों बे नटखट ?
भुन न जायगा भुनगे सा झट ?'

'गोली खाई ही है !' चल हट !'
'कई—भाँग की !' वा , मेरे भट !
'सच काका !' भगवान राम
'सीसे की गोली !' 'रामधे ?' 'विकट !'
गदका उस पर पडता चटपट !

वह भी फौरन बद्धी कस कर
काका को देता प्रत्युत्तर,
खेत रह गये जब सब रण में
वह तब निधडक गुस्से में भर,
लडने को निकला था बाहर !

लट्टू उसके गुन पर हरिजन,
छेड़ रहा वंशी फिर मोहन,
तिरछी चितवन से जन मन हर
इठला रही चमारिन छन छन,
ठनक कसावर बजता ठन ठन !

ये समाज के नीच अधम जन,
नाच कूद कर बहलाते मन,
वर्णों के पद दलित चरण ये
मिटा रहे निज कसक औ' कुढन
कर उच्छृंखलता उद्धतपन !

अररर . ...
शोर, हँसी, हुल्लड़, हुडदंग,
धमक रहा धाग्डाँग मृदग
मार पीट बकवास झडप में
रग दिखाती महुआ, भग
यह चमार चौदस का ढग !

जनवरी '४०]

कहारों का रुद्र नृत्य

रंग रंग के चीरो से भर अग, चीरुवासा-से,
दैन्य शून्य में अप्रतिहत जीवन की अभिलाषा-से,
जटा घटा सिर पर, यौवन की श्मश्रु छटा आनन पर,
छोटी बडी तूँबिया, रँग रँग की गुरियाँ सज तन पर,
हुलस नृत्य करते तुम अटपट धर पटु पद, उच्छृङ्खल
आकांक्षा से समुच्छ्वसित जन मन का हिला धरातल!

फड़क रहे अवयव, आवेश विवश मुद्राएँ अंकित;
प्रखर लालसा की ज्वालाओ सी अगुलियाँ कपित;
उष्ण देश के तुम प्रगाढ जीवनोल्लास-से निर्भर,
बर्हभार उद्दाम कामना के-से खुले मनोहर!
एक हाथ में ताम्र डमरु धर, एक शिवा की कटि पर,
नृत्य तरंगित रुद्ध पूर-से तुम जन मन के सुखकर!

वाद्यो के उन्मत्त घोष से, गायन स्वर से कंपित
जन इच्छा का गाढ चित्र कर हृदय पटल पर अकित;
खोल गए संसार नया तुम मेरे मन मे क्षण भर
जन संस्कृति का तिग्म स्फीत सौन्दर्य स्वप्न दिखला कर!
युग युग के सत्याभासो से पीडित मेरा अतर
जन मानव गौरव पर विस्मित : मै भावी चिन्तन पर!

फरवरी '४०]

भारतमाता

भारतमाता
ग्रामवासिनी ।
खेतों मे फैला है श्यामल
धूल भरा मैला सा आँचल,
गगा यमुना मे आँसू जल
मिट्टी की प्रतिमा
उदासिनी !

दैन्य जड़ित अपलक नत चितवन
अधरो मे चिर नीरव रोदन,
युग युग के तम से विषण्ण मन,
वह अपने घर मे
प्रवासिनी !

तीस कोटि सतान नग्न तन,
अर्ध क्षुधित, शोषित निरस्त्र जन,
मूढ़, असभ्य, अशिक्षित, निर्धन,
नत मस्तक
तरु तल निवासिनी ।

स्वर्ण शस्य पर-पदतल लुठित,
धरती सा सहिष्णु मन कुठित,
क्रंदन कपित्त अधर मौन स्मित,
राहु ग्रसित
शरदेन्दु हासिनी !

चिंतित भृकुटि क्षितिज तिमिरांकित,
नमित नयन नभ वाष्पाच्छादित,
आनन श्री छाया शशि उपमित,
ज्ञान मूढ
गीता ·प्रकाशिनी !

सफल आज उसका तप संयम,
पिला अहिंसा स्तन्य सुधोपम,
हरती जन मन भय, भव तम भ्रम,
जग जननी
जीवन विकासिनी !

जनवरी '४०]

चरखा गीत

भ्रम, भ्रम, भ्रम,—
घूम घूम, भ्रम भ्रम रे चरखा
कहता : 'मै जन का परम सखा,
जीवन का सीधा सा नुसखा—
श्रम, श्रम, श्रम !'

कहता : 'हे अगणित दरिद्रगण !
जिनके पास न अन्न, धन, वसन,
मै जीवन उन्नति का साधन-
क्रम, क्रम, क्रम !'

भ्रम, भ्रम, भ्रम,—
'धुन रूई, निर्धनता दो धुन,
कात सूत, जीवन पट लो बुन,
अकर्मण्य, सिर मत धुन, मत धुन,
थम, थम, थम !

'नग्न गात यदि भारत मा का,
तो खादी समृद्धि की राका,
हरो देश की दरिद्रता का
तम, तम, तम !'

भ्रम, भ्रम, भ्रम,—
कहता चरखा प्रजातन्त्र से :
'मै कामद हूँ सभी मन्त्र से;'
कहता हँस आधुनिक यंत्र से :
'नम, नम, नम !'

'सेवक पालक शोषित जन का,
रक्षक मै स्वदेश के धन का,
कातो हे, काटो तन मन का
भ्रम, भ्रम, भ्रम !'

दिसंबर '३६]

महात्मा जी के प्रति

निर्वाणोन्मुख आदर्शो के अंतिम दीप शिखोदय !—
जिनकी ज्योति छटा के क्षण से प्लावित आज दिगचल,—
गत आदर्शो का अभिभव ही मानव आत्मा की जय,
अतः पराजय आज तुम्हारी जय से चिर लोकोज्ज्वल !

मानव आत्मा के प्रतीक ! आदर्शो से तुम ऊपर,
निज उद्देश्यों से महान्, निज यश से विशद, चिरंतन;
सिद्ध नही तुम लोक सिद्धि के साधन बने महत्तर,
विजित आज तुम नर वरेण्य, गणजन विजयी साधारण !

युग युग की संस्कृतियों का चुन तुमने सार सनातन
नव संस्कृति का शिलान्यास करना चाहा भव शुभकर,
साम्राज्यों ने ठुकरा दिया युगो का वैभव पाहन—
पदाघात से मोह मुक्त हो गया आज जन अंतर !

दलित देश के दुर्दम नेता, हे ध्रुव, धीर, धुरंधर,
आत्म शक्ति से दिया जाति शव को तुमने जीवन बल;
विश्व सभ्यता का होना था नखशिख नव रूपांतर !
राम राज्य का स्वप्न तुम्हारा हुआ न यो ही निष्फल !

विकसित व्यक्तिवाद के मूल्यो का विनाश था निश्चय,
वृद्ध विश्व सामंत काल का था केवल जड़ खँडहर
हे भारत के हृदय ! तुम्हारे साथ आज निःसशय
चूर्ण हो गया विगत सांस्कृतिक हृदय जगत् का जर्जर !

गत संस्कृतियों का आदर्शों का था नियत पराभव,
वर्ग व्यक्ति की आत्मा पर थे सौध धाम जिनके स्थित;
तोड युगों के स्वर्ण पाश अब मुक्त हो रहा मानव,
जन मानवता की भव संस्कृति आज हो रही निर्मित!

किए प्रयोग नीति सत्यों के तुमने जन जीवन पर,
भावादर्श न सिद्ध कर सके सामूहिक जीवन-हित;
अधोमूल अश्वत्थ विश्व, शाखाएँ संस्कृतियाँ वर,
वस्तु विभव पर ही जनगण का भाव विभव अवलंबित।

वस्तु सत्य का करते भी तुम जग मे यदि आवाहन,
सब से पहले विमुख तुम्हारे होता निर्धन भारत;
मध्य युगो की नैतिकता में पोषित शोषित जनगण
बिना भाव-स्वप्नो को परखे कब हो सकते जाग्रत?

सफल तुम्हारा सत्यान्वेषण, मानव सत्यान्वेषक।
धर्म-नीति के मान अचिर सब, अचिर शास्त्र, दर्शन मत,
शासन, जनगण तंत्र अचिर—युग स्थितियाँ जिनकी प्रेषक,
मानव गुण, भव रूप नाम होते परिवर्तित युगपत्।

पूर्ण पुरुष, विकसित मानव तुम, जीवन सिद्ध अहिंसक,
मुक्त हुए तुम मुक्त हुए-जन, हे जग वद्य महात्मन्।
देख रहे मानव भविष्य तुम मनश्चक्षु बन अपलक,
धन्य, तुम्हारे श्री चरणों से धरा आज चिर पावन।

दिसंबर '३९]

राष्ट्र गान

जन भारत हे !
भारत हे !

स्वर्ग स्तंभवत् गौरव मस्तक
उन्नत हिमवत् हे,
जन भारत हे
जाग्रत भारत हे ।

गगन चुंबि विजयी तिरंग ध्वज
इंद्रचापवत् हे,
कोटि कोटि हम श्रमजीवी सुत
सभ्रम युत नत हे,
सर्व एक मत, एक ध्येय रत,
सर्व श्रेय व्रत हे,
जन भारत हे,
जाग्रत भारत हे ।

समुच्चरित शत शत कंठों से
जन युग स्वागत हे,
सिन्धु तरंगित, मलय श्वसित,
गंगाजल ऊर्मि निरत हे,
शरद इंदु स्मित अभिनंदन हित,
प्रतिध्वनित पर्वत हे,

स्वागत हे, स्वागत हे,
जन भारत हे,
जाग्रत भारत हे !

स्वर्ग खड षड् ऋतु परिक्रमित,
आम्र मंजरित, मधुप गुजरित,
कुसुमित फल द्रुम पिक कल कूजित
उर्वर, अभिमत हे,
दश दिशि हरित शस्य श्री हर्षित
पुलक राशिवत् हे,
जन भारत हे,
जाग्रत भारत हे ।

जाति धर्म मत, वर्ग श्रेणि शत,
नीति रीति गत हे
मानवता मे सकल समागत
जन मन परिणत हे,
अहिंसास्त्र जन का मनुजोचित
चिर अप्रतिहत हे,
बल के विमुख, सत्य के सम्मुख
हम श्रद्धानत हे,
जन भारत हे,
जाग्रत भारत हे ।

किरण केलि रत रक्त विजय ध्वज
युग प्रभातवत् हे,

कीर्ति स्तंभवत् उन्नत मस्तक
प्रहरी हिमवत् हे,
पद तल छू शत फेनिलोर्मि फन
शेषोदधि नत हे,
वर्ग मुक्त हम श्रमिक कृषक जन
चिर शरणागत हे,
जन भारत हे,
जाग्रत भारत है ।

जनवरी '४०]

ग्राम देवता

राम राम,
हे ग्राम देवता, भूति ग्राम।
तुम पुरुष पुरातन, देव सनातन पूर्णकाम,
शिर पर शोभित वर छत्र तडित् स्मित घन श्याम
वन पवन मर्मरित-व्यजन, अन्न फल श्री ललाम!

तुम कोटि बाहु, वर हलधर, वृष वाहन बलिष्ठ,
मित अशन, निर्वसन, क्षीणोदर, चिर सौम्य शिष्ट;
शिर स्वर्ण शस्य मंजरी मुकुट, गणपति वरिष्ठ,
वाग्युद्ध वीर, क्षण क्रुद्ध धीर, नित कर्मनिष्ठ!

पिक वयनी मधुऋतु से प्रति वत्सर अभिनंदित,
नव आम्र मजरी मलय तुम्हे करता अर्पित;
प्रावृट् मे तव प्रागण घन गर्जन से हर्षित,
मरकत कल्पित नव हरित प्ररोहों में पुलकित!

शशि मुखी शरद् करती परिक्रमा कुद स्मित,
वेणी मे खोसे काँस, कान में कुँई लसित;
हिम तुमको करता तुहिन मोतियो से भूषित,
बहु सोन कोक युग्मों से तव सरि-सर कूजित!

अभिराम तुम्हारा बाह्य रूप, मोहित कवि मन,
नभ के नीलम संपुट मे तुम मरकत शोभन!
पर, खोल आज निज अंत पुर के पट गोपन
चिर मोह मुक्त कर दिया, देव! तुमने यह जन!

राम राम

हे ग्राम देवता, रूढि धाम!
तुम स्थिर, परिवर्तन रहित, कल्पवत् एक याम,
जीवन संघर्षण विरत, प्रगति पथ के विराम,
शिक्षक तुम, दस वर्षो से मै सेवक, प्रणाम!

कवि अल्प उडुप मति, भव तितीर्षु,—दुस्तर अपार,
कल्पना पुत्र मै, भावी द्रष्टा निराधार,
सौन्दर्य स्वप्नचर,—नीति दडधर तुम उदार,
चिर परम्परा के रक्षक, जन हित मुक्त द्वार!

दिखलाया तुमने भारतीयता का स्वरूप,
जन मर्यादा का स्रोत - शून्य चिर अंध कूप,
जग से अबोध जानता न था मै छाँह धूप,
तुम युग युग के जन विश्वासों का जीर्ण स्तूप,

यह वही अवध! तुलसी की सस्कृति का निवास!
श्री राम यही करते जन मानस मे विलास!
अह, सतयुग के खँडहर का यह दयनीय ह्रास!
वह अकथनीय मानसिक दैन्य का बना ग्रास!!

ये श्रीमानों के भवन आज साकेत धाम!
संयत्त तप के आदर्श बन गये भोग काम!
आराधित सत्त्व यहाँ; पूजित धन, वश नाम!
यह विकसित व्यक्तिवाद की सस्कृति! राम राम!!

श्री राम रहे सामत काल के ध्रुव प्रकाश,
पशुजीवी युग में नव कृषि संस्कृति के विकास,
कर सका मध्य युग नही जनों का तम विनाश,
वे रहे सनातनता के तब से क्रीत दास !

पशु युग में थे गणदेवो के पूजित पशुपति,
थो रुद्रचरो से कुठित कृषि युग की उन्नति !
श्री राम रुद्र की शिव मे कर जन हित परिणति,
जीवित कर गये अहल्या को, थे सीतापति !

वाल्मीकि बाद आए श्री व्यास जगत् वदित,
वह कृषि सस्कृति का चरमोन्नत युग था निश्चित;
बन गए राम तब कृष्ण, भेद, मात्रा का मित,
वैभव युग की वशी से कर जन मन मोहित !

तब से युग युग के हुए चित्रपट परिवर्तित,
तुलसी ने कृषि मन युग अनुरूप किया निर्मित,
खो गया सत्य का रूप, रह गया नामामृत,
जन समाचरित वह सगुण बन गया आधारित !

गत सक्रिय गुण बन रूढि रोति के जाल गहन
कृषि प्रमुख देश के लिए हो गए जड़ बधन,
जन नही, यत्र जीवनोपाय के अब वाहन,
सस्कृति के केन्द्र न वर्ग अधिप, जन साधारण !

उच्छिष्ट युगों का आज सनातनवत् प्रचलित,
बन गई चिरंतन रीति-नीतियाँ, स्थितियाँ मृत !
गत सस्कृतियाँ थी विकसित वर्ग व्यक्ति आश्रित,
तब वर्ग व्यक्ति गुण, जन समूह गुण अब विकसित !

अति मानवीय था निश्चित विकसित व्यक्तिवाद
मनुजो में जिसने भरा देव पशु का प्रमाद;
जन जीवन बना न विशद, रहा वह निराह्लाद,
विकसित नर नर-अपवाद नही, जन-गुण-विवाद !

तब था न वाष्प विद्युत् का जग मे हुआ उदय,
थे मनुज यत्र, युग पुरुष सहस्र हस्त बलमय;
अब यंत्र मनुज के कर पद बल, सेवक समुदय,
सामत मान अब व्यर्थ,—समृद्ध विश्व अतिशय !

अब मनुष्यता को नैतिकता पर पानी जय,
गत वर्ग गुणों को जन सस्कृति में होना लय,
देशो राष्ट्रो को मानव जग बनना निश्चय,
अतर जग को फिर लेना बहिर्जगत आश्रय !

राम राम,
हे ग्राम्य देवता यथा नाम !
शिक्षक हो तुम, मै शिष्य, तुम्हे सविनय प्रणाम !
विजया, महुआ, ताड़ी, गाँजा पी सुबह शाम
तुम समाधिस्थ नित रहो, तुम्हे जग से न काम !

पंडित, पंडे, ओझा, मुखिया औ' साधु, सत
दिखलाते रहते तुम्हे स्वर्ग अपवर्ग पथ;
जो था, जो है, जो होगा,—सब लिख गये ग्रथ,
विज्ञान ज्ञान से बड़े तुम्हारे मत्र तंत्र !

युग युग से जनगण, देव ! तुम्हारे पराधीन,
दारिद्रय दु:ख के कर्दम में कृमि सदृश लीन !

बहु रोग शोक पीड़ित, विद्या बल बुद्धि हीन,
तुम राम राज्य के स्वप्न देखते उदासीन!

जन अमानुषी आदर्शों के तम से कवलित,
माया उनको जग, मिथ्या जीवन देह अनित;
वे चिर निवृत्ति के भोगी,—त्याग विराग विहित,
निज आचरणों मे नरक जीवियों तुल्य पतित!

वे देव भाव के प्रेमी,—पशुओ से कुत्सित,
नैतिकता के पोषक—मनुष्यता से वचित,
बहु नारी सेवी,—पतिव्रता ध्येयी निज हित,
वैधव्य विधायक,—बहु विवाह वादी निश्चित!

सामाजिक जीवन के अयोग्य, ममता प्रधान,
सघर्षण विमुख, अटल उनको विधि का विधान,
जग से अलिप्त वे, पुनर्जन्म का उन्हे ध्यान,
मानव स्वभाव के द्रोही, श्वानो के समान!

राम राम,
हे ग्राम देव, लो हृदय थाम,
अब जन स्वातत्र्य युद्ध की जग मे धूम धाम!
उद्यत जनगण युग क्रांति के लिए बाँध लाम,
तुम रूढि रीति की खा अफीम लो चिर विराम!

यह जन स्वातत्र्य नही जनैक्य का वाहक रण,
यह अर्थ राजनीतिक न, सास्कृतिक सघर्षण!
युग युग की खड मनुजता, दिशि दिशि के जनगण
मानवता मे मिल रहे,—ऐतिहासिक यह क्षण!

नव मानवता मे जाति वर्ग होगे सब क्षय,
राष्ट्रो के युग वृत्ताश परिधि मे जग की लय!
जन आज अहिसक, होगे कल स्नेही सहृदय,
हिन्दू, ईसाई, मुसलमान,—मानव निश्चय!

मानवता अब तक देश काल के थी आश्रित,
सस्कृतियाँ सकल परिस्थितियो से थी पीडित,
गत देश काल मानव के बल से आज विजित,
अब खर्व विगत नैतिकता मनुष्यता विकसित!

छायाएँ हैं सस्कृतियाँ मानव की निश्चित
वह केन्द्र, परिस्थितियों के गुण उसमे बिम्बित;
मानवी चेतना खोल युगो के गुण कवलित
अब नव सस्कृति के वसनों से होगी भूषित!

विश्वास, धर्म, सस्कृतियाँ, नीति रीतियाँ गत
जन सघर्षण मे होगी ध्वस, लीन, परिणत;
बंधन विमुक्त हो मानव आत्मा अप्रतिहत
नव मानवता का सद्य करेगी युग स्वागत!

राम राम

हे ग्राम देवता, रूढिधाम!
तुम पुरुष पुरातन, देव सनातन पूर्ण काम,
जड़वत्, परिवर्तन शून्य, कल्प शत एक याम,
शिक्षक हो तुम, मै शिष्य, तुम्हे शत शत प्रणाम!

जनवरी '४०]

सध्या के बाद

सिमटा पख साँझ की लाली
जा बैठी अब तरु शिखरो पर
ताम्रपर्ण पीपल से, शतमुख
झरते चचल स्वर्णिम निर्झर !
ज्योति स्तंभ सा धँस सरिता में
सूर्य क्षितिज पर होता ओझल,
बृहद जिह्म विश्लथ केंचुल सा
लगता चितकबरा गगाजल !

धूपछाँह के रँग की रेती
अनिल ऊर्मियो से सर्पांकित,
नील लहरियो मे लोडित
पीला जल रजत जलद से बिम्बित !
सिकता, सलिल, समीर सदा से
स्नेह पाश में बँधे समुज्ज्वल,
अनिल पिघल कर सलिल, सलिल
ज्यो गति द्रव खो बन गया लवोपल !

शख घट बजते मन्दिर मे
लहरों मे होता लय कपन,
दीप शिखा सा ज्वलित कलश
नभ मे उठकर करता नीराजन !
तट पर बगुलों सी वृद्धाएँ
विधवाएँ जप ध्यान मे मगन,
मथर धारा में बहता
जिनका अदृश्य गति अंतर-रोदन !

दूर, तमस रेखाओ सी,
उडते पखो की गति सी चित्रित
सोन खगो की पाँति
आर्द्र ध्वनि से नीरव नभ करती मुखरित !
स्वर्ण चूर्ण सी उडती गोरज
किरणो की बादल सी जल कर,
सनन् तीर सा जाता नभ मे
ज्योतित पखो कठों का स्वर !

लौटे खग, गाएँ घर लौटीं,
लौटे कृषक श्रात श्लथ डग धर
छिपे गृहो मे म्लान चराचर
छाया भी हो गई अगोचर,
लौट पैठ से व्यापारी भी
जाते घर, उस पार नाव पर,
ऊँटो, घोड़ो के सँग बैठे
खाली बोरों पर, हुक्का भर !

जाड़ो की सूनी द्वाभा मे
झूल रही निशि छाया गहरी,
डूब रहे निष्प्रभ विषाद में
खेत, बाग, गृह, तरु तट लहरी !
बिरहा गाते गाड़ी वाले,
भूँक भूँक कर लड़ते कूकर,
हुआ हुआ करते सियार
देते विषण्ण निशि बेला को स्वर !
माली की मँड़ई से उठ,
नभ के नीचे नभ-सी धूमाली

मद पवन मे तिरती
नीली रेशम की सी हलकी जाली
बत्ती जला दुकानों में
बैठे सब कस्बे के व्यापारी,
मौन मद आभा में
हिम की ऊँघ रही लबी अँधियारी।

धुँआ अधिक देती है
टिन की ढबरी, कम करती उजियाला,
मन से कढ अवसाद श्राति
आँखों के आगे बुनती जाला;
छोटी सी बस्ती के भीतर
लेन देन के थोथे सपने
दीपक के मंडल में मिलकर
मँडराते घिर सुख दुख अपने!

कँप कँप उठते लौ के सँग
कातर उर क्रन्दन, मूक निराशा,
क्षीण ज्योति ने चुपके ज्यों
गोपन मन को दे दी हो भाषा!
लीन हो गई क्षण में बस्ती,
मिट्टी खपरे के घर आँगन,
भूल गए लाला अपनी सुधि,
भूल गया सब ब्याज, मूलधन!

सकुची सी परचूनी किराने की ढेरी
लग रही तुच्छतर,
इस नीरव प्रदोष में आकुल
उमड़ रहा अंतर जग बाहर!

अनुभव करता लाला का मन,
छोटी हस्ती का सस्तापन,
जाग उठा उसमें मानव,
औ' असफल जीवन का उत्पीड़न !

दैन्य दु:ख अपमान ग्लानि
चिर क्षुधित पिपासा, मृत अभिलाषा,
बिना आय की क्लांति बन रही
उसके जीवन की परिभाषा।
जड़ अनाज के ढेर सदृश हो
वह दिन भर बैठा गद्दी पर
बात बात पर झूठ बोलता
कौडी की स्पर्धा मे मर मर।

फिर भी क्या कुटुंब पलता है ?
रहते स्वच्छ सुघर सब परिजन ?
बना पा रहा वह पक्का घर ?
मन में सुख है ? जुटता है धन ?
खिसक गई कंधों से कथड़ी
ठिठुर रहा अब सर्दी से तन,
सोच रहा बस्ती का बनिया
घोर विवशता का निज कारण !

शहरी बनियो सा वह भी उठ
क्यो बन जाता नही महाजन ?
रोक दिए हैं किसने उसकी
जीवन उन्नति के सब साधन ;
यह क्या संभव नही
व्यवस्था मे जग की कुछ हो परिवर्तन ?

कर्म और गुण के समान ही
सकल आय व्यय का हो वितरण ?

घुसे घरौदो मे मिट्टी के
अपनी अपनी सोच रहे जन,
क्या ऐसा कुछ नही,
फूँक दे जो सबमे सामूहिक जीवन ?
मिलकर जन निर्माण करें जग,
मिलकर भोग करे जीवन का,
जन विमुक्त हों जन शोषण से,
हो समाज अधिकारी धन का ?

दरिद्रता पापों की जननी,
मिटे जनों के पाप, ताप, भय,
सुन्दर हों अधिवास, वसन, तन,
पशु पर फिर मानव की हो जय ?
व्यक्ति नहीं, जग की परिपाटी
दोषी जन के दुख क्लेश की,
जन का श्रम जन मे बँट जाए,
प्रजा सुखी हो देश देश की !

टूट गया वह स्वप्न वणिक का,
आई जब बुढिया बेचारी,
आध पाव आटा लेने,—
लो, लाला ने फिर डडी मारी !
चीख उठा घुघ्घू डालों मे
लोगो ने पट दिये द्वार पर,
निगल रहा बस्ती को धीरे,
गाढ अलस निद्रा का अजगर !

दसंबर '३६]

खिड़की से

पूस : निशा का प्रथम प्रहर · खिडकी से बाहर
दूर क्षितिज तक स्तब्ध आम्र मन सोया : क्षणभर
दिन का भ्रम होता · पूनो ने तृण तरुओं पर
चाँदी मढ दी है, भू को स्वप्नों से जड कर !
चारु चन्द्रिकातप से पुलकित निखिल धरातल
चमक रहा है, ज्यों जल में बिम्बित जग उज्ज्वल !

स्पष्ट दीखते,—खिड़की की जाली में विजड़ित
कटहल, लीची, आम,—घूक गेदुर से कपित;
फाटक औ' हाते के खभे, बगिया के पथ,
आधी जगत कुँए की, कुरिया की छाजन श्लथ;
अस्पताल का भाग, मेहराबे दरवाजे,
स्फटिक सदृश जो चमक रहे चूने से ताजे !
औ'—टेढी मेढो दिगंत रेखा के ऊपर
पास पास दो पेड ताड़ के खडे मनोहर !

आधी खिड़की पर अगणित ताराओ से स्मित
हरित धरा के ऊपर नीलाबर छायाकित !
कचपचिया (कृत्तिका) सामने शोभित सुन्दर
मोती के गुच्छे सी : भरणी ज्यों त्रिकोण वर !
पास रोहिणी, प्रिय मिलनातुर बाँह खोलकर,
सेंदुर की बेंदी दे, जुड़वों को गोदी भर !
लुब्ध दृष्टि लुब्धक समीप ही, छोड़ रहा शर
आदि काल से मृग पर : मृगशिर सहज मनोहर !

उधर जडे पुखराज लाल-से गुरु औ' मगल
साथ साथ, जिनमे अवश्य गुरु सबसे उज्ज्वल।
हस्ता है प्रत्यक्ष : कठिन वृश्चिक का मिलना,
वह शायद आर्द्रा कहता हिमजल सा हिलना!
ज्योति फेन सी स्वर्गंगा नभ बीच तरगित,
परियों की माया सरसी सी छायालोकित;
ज्वलित पुज ताराओं के वाष्पो से सस्मित,
नीलम के नभ में रत्नप्रभ पुल सी निर्मित!
खोज रहा हूँ कहाँ उदित सप्तर्षि गगन में
अरुन्धती को लिए साथ, विस्मित-से मन में!
प्रश्न चिह्न-से जो अनादि से नभ मे अकित,
उत्तर मे स्थिर ध्रुव की ओर किए चिर इगित,
पूछ रहे हो ससृति का रहस्य ज्यो अविदित—
'क्या है वह ध्रुव सत्य? गहन नभ जिससे ज्योतित!

ज्योत्स्ना मे विकसित सहस्रदल-भू पर, अबर
शोभित ज्यो लावण्य स्वप्न अपलक नयनो पर!
यह प्रतिदिन का दृश्य नही, छल से वातायन
आज खुल गया अप्सरियों के जग मे मोहन!
चिर परिचित माया बल से बन गए अपरिचित,
निखिल वास्तविक जगत कल्पना से ज्यों चित्रित!
आज असुदरता, कुरूपता भू से ओझल,
सब कुछ सुन्दर ही सुन्दर, उज्ज्वल ही उज्ज्वल!
एक शक्ति से, कहते, जग प्रपच यह विकसित,
एक ज्योति-कर से समस्त जड़ जेतन निर्मित,
सच है यह : आलोक पाश में बँधे चराचर
आज आदि कारण की ओर खीचते अंतर!

क्षुद्र आत्म-पर भूल, भूत सब हुए समन्वित,
तृण, तरु से तारालि—सत्य है एक अखंडित !
मानव ही क्यो इस असीम समता से वंचित ?
ज्योति भीत, युग-युग से तमस विमूढ, विभाजित !

दिसंबर '३९]

रेखाचित्र

चाँदी की चौडी रेती,
फिर स्वर्णिम गगा धारा,
जिसके निश्चल उर पर विजड़ित
रत्न छाय नभ सारा!

फिर बालू का नासा
लबा ग्राह् तुड सा फैला,
छितरी जल रेखा—
कछार फिर गया दूर तक मैला!

जिस पर मछुओ की मँडई,
औ' तरबूजो के ऊपर,
बीच बीच में, सरपत के मूठे
खग - से खोले पर!

पीछे, चित्रित विटप पाँति
लहराई सांध्य क्षितिज पर
जिससे सट कर
नील धूम्र रेखा ज्यों खिची समांतर!

बर्हं पुच्छ - से जलद पख
अबर में बिखरे सुन्दर

रंग रंग की हलकी गहरी
छायाएँ छिटका कर!

सब से ऊपर निर्जन नभ में
अपलक सध्या तारा,
नीरव औ' नि सग,
खोजता सा कुछ, चिर पथहारा!

साँझ,—नदी का सूना तट,
मिलता है नही किनारा,
खोज रहा एकाकी जीवन
साथी, स्नेह सहारा!

जनवरी '४०]

दिवा स्वप्न

दिन की इस विस्तृत आभा में, खुली नाव पर
आर पार के दृश्य लग रहे साधारणतर!
केवल नील फलक सा नभ, सैकत रजतोज्ज्वल,
और तरल बिल्लौर वेश्मतल सा गगा जल—

चपल पवन के पदाचार से अहरह स्पदित—
शांत हास्य से अतर को करते आह्लादित!
मुक्त स्निग्ध उल्लास उमड जल हिलकोरो पर
नृत्य कर रहा, टकरा पुलकित तट छोरों पर!

यह सैकत तट पिघल-पिघल यदि बन जाता जल
बह सकती यदि धरा चूमती हुई दिगचल,
यदि न डुबाता जल, रहकर चिर मृदुल तरलतर,
तो मैं नाव छोड़, गंगा के गलित स्फटिक पर

आज लोटता, ज्योति जड़ित लहरों सँग जी भर!
किरणों से खेलता मिचौनी मै लुक-छिप कर,
लहरों के अचल मे फेन पिरोता सुन्दर,
हँसता कल कल : मत्त नाचता, भूल पैग भर!

कैसा सुन्दर होता बदन न होता गीला
लिपटा रहता सलिल रेशमी पट सा ढीला!
यह जल गीला नही गलित नभ केवल चचल
गीला लगता हमें न भीगा हुआ स्वय जल!

हाँ चित्रित से लगते तृण-तरु भू पर बिम्बित
मेरे चल पद चूम धरणि हो उठती कपित!

एक सूर्य होता नभ मे सौ भू पर विजड़ित
सिहर लिहर क्षिति मारुत को करती आलिंगित !

निशि मे ताराओ से होती धरा जब खचित
स्वप्न देखता स्वर्ग लोक में मै ज्योत्स्ना स्मित !
गुन के बल चल रही प्रतनु नौका चढाव पर
बदल रहे तट दृश्य चित्रपट पर ज्यों सुन्दर !

वह जल से सट कर उडते है चटुल पनेवा
इन पखो की परियो को चाहिए न खेवा !
दमक रही उजियारी छाती करछौहे पर
श्याम घनो से झलक रही बिजली क्षण-क्षण पर !

उधर कगारे पर अटका है पीपल तरुवर
लंबी टेढी जड़े जटा सी छितरी बाहर !
लोट रहा सामने सूस पनडुब्बी सा तिर,
पूँछ मार जल मे चमकीली करवट खा फिर !

सोन कोक के जोड़े बालू की चाँदों पर
चोंचो से सहला पर, क्रीडा करते सुखकर !
बैठ न पाती, चक्कर देती देव दिलाई,
तिरती लहरों पर सफेद काली परछाँई !

लो, मछरंगा उतर तीर सा नीचे क्षण में
पकड तड़पती मछली को उड गया गगन में !
नरकुल की चोचें ले चाहा फिरते फर् फर्,
मँडराते सुरखाब व्योम में आर्त नाद कर,—

काले, पीले, खैरे, बहुरगे चित्रित पर,
चमक रहे बारी बारी स्मित आभा से भर !
वह टीले के ऊपर तूँबी सा, बबूल पर,
सरपत का घोंसला बया का लटका सुन्दर !

दूर उधर, जगल मे भीटा एक मनोहर
दिखलाई देता है वन देवों का सा घर,
जहाँ खेलते छायातप, मारुत तरु-मर्मर,
स्वप्न देखती विजन शाति मे मौन दोपहर !

वन की परियाँ धूपछाँह की साडी पहने
जहाँ विचरती चुनने ऋतु कुसुमो के गहने !
वहाँ मत्त करती मन नव मुकुलों की सौरभ,
गुजित रहता सतत द्रुमों का हरित श्वसित नभ !

वहाँ गिलहरी दौडा करती तरु डालो पर
चचल लहरी सी, मृदु रोमिल पूँछ उठा कर
और वन्य विहँगो-कीटो के सौ सौ प्रिय स्वर
गीत वाद्य से बहलाते शोकाकुल अन्तर !

वही कही जी करता, मै जाकर छिप जाऊँ,
मानव जग के क्रंदन से छुटकारा पाऊँ
प्रकृति नीड़ मे व्योम खगो के गाने गाऊँ
अपने चिर स्नेहातुर उर की व्यथा भुलाऊँ !

जनवरी '४०]

सौन्दर्य कला

नव वसत की रूप राशि का ऋतु उत्सव यह उपवन,
सोच रहा हूँ, जन जग से क्या सचमुच लगता शोभन !
या यह केवल प्रतिक्रिया, जो वर्गो के संस्कृत जन
मन मे जागृत करते, कुसुमित अंग, कंटकाबूत मन !

रंग-रंग के खिले फ्लॉक्स वरवीना, छपे डियाथस,
नत दृग ऐन्टिह्निनम तितली सी पेजी पॉपी सालस,
हँसमुख कैंडीटफ्ट रेशमी चटकीले नैस्टरशम,
खिली स्वीट पी,—एबडस, फिलबास्केट, औ' ब्लू बैटम !

दुहरे कार्नेशस, स्वीट सुलतान सहज रोमांचित,
ऊँचे हॉली हॉक, लार्कस्पर पुष्प स्तभ के शोभित;
फूले बहु मखमली, रेशमी, मृदुल गुलाबो के दल,
धवल मिसेज़ एड्रू कार्नेगी, ब्रिटिश क्वीन हिम उज्ज्वल !

जोसेफ हिल, सनबस्ट पीत, स्वर्णिम लेडी हेलिंडन,
ग्रेंड मुगल, रिचमंड, विकच ब्लैक प्रिंस नील लोहित तन,
फेअरी क्वीन, मार्गेरेट मृदु, वीलियम शीन चिर पाटल
बटन रोज बहु लाल, ताम्र माखनी रग के कोमल !

विविध आयताकार, वर्ग षट्कोण क्यारियाँ सुषमित,
वर्तुल, अंडाकृति नव रुचि से कटी छँटी, दूर्वावृत;
चित्रित से उपवन मे शत रगो मे आतप छाया,
सुरभि श्वसित मारुत, पुलकित कुसुमो की कम्पित काया !

नव वसत की श्री शोभा का दर्पण सा यह उपवन,
सोच रहा हूँ, क्या विवर्ण जन जग से लगता शोभन !
इस मटमैली पृथ्वी ने सतरगी रवि किरणो से
खीच लिए किस माया बल से सब रँग आभरणों-से ?

युग युग से किन सूक्ष्म बीज कोषों से विकसित होकर
राशि राशि ये रूप रंग भू पर हो रहे निछावर!
जीवन ये भर सके नही मृण्मय तन मे धरती के,
सुन्दरता के सब प्रयोग लग रहे प्रकृति के फीके!

जग विकास क्रम मे सुन्दरता कब की हुई पराजित,
तितली, पक्षी, पुष्प वर्ग इसके प्रमाण है जीवित!
हृदय नही इस सुन्दरता के, भावोन्मेष न मन में
अगों का उल्लास न चिर रहता, कुम्हलाता क्षण में!

हुआ सृष्टि में बुद्ध हृदय जीवो का तभी पदार्पण,
जड सुन्दरता का निसर्ग कर सका न आत्म समर्पण!
मानव उर मे भर ममत्व जीवों के जीवन के प्रति
चिर विकास प्रिय प्रकृति देखती तब से मानव परिणति!

आज मानवी संस्कृतियाँ हैं वर्ग चयन से पीड़ित,
पुष्प पक्षियों सी वे अपने ही विकास मे सीमित!
इस विशाल जन जीवन के जग से हो जाति विभाजित
व्यापक मनुष्यत्व से वे सब आज हो रही वचित!

हृदय हीन, अस्तित्व मुग्ध ये वर्गो के जन निश्चित,
वेश वसन भूषित बहु पुष्प-वनस्पतियों-से शोभित!
हुआ कभी सौदर्य कला युग अत प्रकृति जोवन मे,
मानव जग से जाने को वह अब युग परिवर्तन मे!

हृदय, प्रेम के पूर्ण हृदय से निखिल प्रकृति जग शासित,
जीव प्रेम के सम्मुख रे जीवन सौन्दर्य पराजित!
नव वसन्त की वर्ग कला का दर्शन गृह यह उपवन,
सोच रहा हूँ विश्री जन जग से लगता क्या शोभन!

फरवरी '४०]

स्वीट पी के प्रति

कुल वधुओं सी अयि सलज्ज, सुकुमार!
शयन कक्ष, दर्शन गृह की शृंगार!

उपवन के यत्नो से पोषित,
पुष्प पात्र में शोभित रक्षित,
कुम्हलाती जाती हो तुम निज शोभा ही के भार!
कुल वधुग्रो सी अयि सलज्ज सुकुमार!

सुभग रेशमी वसन तुम्हारे
सुरँग, सुरुचिमय,—
अपलक रहते लोचन!
फूट फूट अगो से सारे
सौरभ अतिशय
पुलकित कर देती मन!
उन्नत वर्ग वृत पर निर्भर,
तुम सस्कृत हो सहज सुघर,
ग्रौ' निश्चय वात्सल्य चयन में
दोनो निर्विशेष हो सुन्दर!
निबल शिराओ में, मृदु तन में
बहती युग युग से जीवन के सूक्ष्म रुधिर की धार!
कुल वधुओ सी अयि सलज्ज, सुकुमार!

मृदुल मलय के स्नेह स्पर्श से
होता तन मे कपन,
जीवन के ऐश्वर्य हर्ष से
करता उर नित नर्तन—

केवल हास विलास मयी तुम
शोभा ही मे शोभन,
प्रणय कुज में साँझ प्रात
करती हो गोपन कूजन।
जग से चिर अज्ञात,
तुम्हे बाँधे निकुज गृह द्वार!
कुल वधुओं सी अयि सलज्ज सुकुमार।

हाय, न क्या आदोलित होता
हृदय तुम्हारा
सुन जगती का क्रन्दन?
क्षुधित व्यथित मानव रोता
जीवन पथ हारा
सह दु सह उत्पीडन।
छोड़ स्वर्ण पिंजर
न निकल आओगी बाहर
खोल वंश अवगठन।
युग युग से दुख कातर
द्वार खडे नारा नर
देते तुम्हे निमत्रण!
जग प्रागण मे क्या न करोगी तुम जन हित अभिसार?
कुल वधुओं सी अयि सलज्ज, सुकुमार!

क्या न बिछाओगी जन पथ पर
स्नेह सुरभि मय
पलक पँखड़ियों के दल।
स्निग्ध दृष्टि से जन-मन हर
आँचल से ढँक दोगी न शूल चय?
जर्जर मानव पदतल।

क्या न करोगी जन स्वागत
सस्मित मुख से ?
होने को आज युगान्तर ?
शोषित दलित हो रहे जाग्रत,
उनके सुख से
समुच्छ्वसित क्या नहीं तुम्हारा अतर ?
क्या न, विजय से फूल, बनोगी तुम जन उर का हार ?
कुल वधुओ सी अयि सलज्ज सुकुमार !

हाय, नही करुणा ममता है मन मे कही तुम्हारे !
तुम्हे बुलाते
रोते गाते
युग युग से जन हारे !
ऊँची डाली से तुम क्षण भर
नही उतर सकती जन भू पर !
फूली रहती
भूली रहती
शोभा ही के मारे !
केवल हास हुलास मयी तुम !
केवल मनोविलास मयी तुम !
विभव भोग उल्लास मयी तुम !
तुमको अपनाने के सारे
व्यर्थ प्रयत्न हमारे !
वधिरा तुम निष्ठुरा,—जनो की विफल सकल मनुहार !
कुल वधुओ सी अयि सलज्ज सुकुमार !

फरवरी '४०]

कला के प्रति

तुम भाव प्रवण हो!

जीवन प्रिय हो, सहनशील, सहृदय हो, कोमल मन हो!
ग्राम तुम्हारा वास रूढियो का गढ़ है चिर जर्जर,
उच्च वश मर्यादा केवल स्वर्ण-रत्नप्रभ पिंजर!
जीर्ण परिस्थितियाँ ये तुम में आज हो रही बिम्बित,
सीमित होती जाती हो तुम, अपने ही मे अवसित!
तुम्हे तुम्हारा मधुर शील कर रहा अजान पराजित;
वृद्ध हो रही हो तुम प्रतिदिन, नही हो रही विकसित!

नारी की सुदरता पर मै होता नही विमोहित,
शोभा का ऐश्वर्य मुझे करता अवश्य आनन्दित!
विशद स्त्रीत्व का ही मै मन मे करता हूँ नित पूजन,
जब आभा देही नारी आह्लाद प्रेम कर वर्षण
मधुर मानवी की महिमा से भू को करती पावन!

तुम में सब गुण है: तोड़ो अपने भय कल्पित बन्धन
जड समाज के कर्दम से उठकर सरोज सी ऊपर
अपने अन्तर के विकास से जीवन के दल दो भर!
सत्य नही बाहर: नारी का सत्य तुम्हारे भीतर,
भीतर ही से करो नियंत्रित जीवन को, छोड़ो डर!

दिसंबर '३९]

स्त्री

यदि स्वर्ग कही है पृथ्वी पर, तो वह नारी उर के भीतर;
दल पर दल खोल हृदय के स्तर
जब बिठलाती प्रसन्न होकर
वह अमर प्रणय के शतदल पर!

मादकता जग में कही अगर, वह नारी अधरों मे सुखकर,
क्षण में प्राणों की पीड़ा हर,
नव जीवन का दे सकती वर
वह अधरों पर धर मदिराधर!

यदि कही नरक है इस भू पर, तो वह भी नारी के अन्दर,
वासनावर्त मे डाल प्रखर
वह अंध गर्त में चिर दुस्तर
नर को ढकेल सकती सत्वर!

जनवरी '४०]

आधुनिका

पशुओं से मृदु चर्म, पक्षियो से ले प्रिय रोमिल पर,
ऋतु कुसुमो से सुरँग सुरुचिमय चित्र वस्त्र ले सुन्दर,
सुभग रूज, लिपस्टिक, ब्रौस्टिक, पौडर से कर मुख रजित,
अगराग, क्यूटेक्स अलक्तक से बन नख शिख शोभित;
'सागर तल से ले मुक्ताफल, खानो से मणि उज्ज्वल'-
रजत स्वर्ण में अंकित तुम फिरती अप्सरि सी चचल!

शिक्षित तुम सस्कृत, युग के सत्याभासों में पोषित,
समकक्षिणी नरो की तुम, निज द्वन्द्व मूल्य पर गर्वित;
नारी की सौन्दर्य मधुरिमा औ' महिमा से मडित,
तुम नारी उर की विभूति से, हृदय सत्य से वचित!
प्रेम, दया, सहृदयता, शील, क्षमा, पर दुख कातरता,
तुममे तप, संयम, सहिष्णुता नही त्याग तत्परता!

लहरी सी तुम चपल लालसा श्वास वायु से नर्तित,
तितली सी तुम फूल फूल पर मँडराती मधुक्षण हित!
मार्जारी तुम, नही प्रेम को करती आत्म समर्पण,
तुम्हे सुहाता रंग प्रणय, धन पद मद, आत्म प्रदर्शन!
तुम सब कुछ हो, फूल, लहर, तितली, विहगी, मार्जारी,
आधुनिके, तुम नही अगर कुछ, नही सिर्फ तुम नारी!

फरवरी '४०]

मजदूरनी के प्रति

नारी की संज्ञा भुला, नरो के संग बैठ,
चिर जन्म सुहृद सी जन हृदयों में सहज पैठ,
जो बँटा रही तुम जग जीवन का काम काज
तुम प्रिय हो मुझे न छूती तुमको काम लाज !

सर से आँचल खिसका है,—धूल भरा जूडा,—
अधखुला वक्ष,—ढोती तुम सिर पर धर कूडा;
हँसती, बतलाती सहोदरा सी जन जन से,
यौवन का स्वास्थ्य झलकता आतप सा तन से !

कुल वधू सुलभ संरक्षण से तुम हो वंचित,
निज बधन खो, तुमने स्वतत्रता की अर्जित !
स्त्री नही, आज मानवी बन गई तुम निश्चित,
जिसके प्रिय अंगों को छू अनिलातप पुलकित !

निज द्वन्द्व प्रतिष्ठा भूल जनों के बैठ साथ,
जो बँटा रही तुम काम काज में मधुर हाथ,
तुमने निज तन की तुच्छ कचुकी को उतार
जग के हित खोल दिए नारी के हृदय द्वार !

फरवरी '४०]

नारी

हाय, मानवी रही न नारी लज्जा से अवगुंठित,
वह नर की लालस प्रतिमा, शोभा सज्जा से निर्मित !
युग युग की वंदिनी, देह की कारा में निज सीमित,
वह अदृश्य अस्पृश्य विश्व से, गृह पशु सी ही जीवित !

सदाचार की सीमा उसके तन से है निर्धारित,
पूत योनि वह मूल्य चर्म पर केवल उसका अंकित;
अंग अंग उसका नर के वासना चिह्न से मुद्रित,
वह नर की छाया, इंगित संचालित, चिर पद लुंठित !

वह समाज की नहीं इकाई,—शून्य समान अनिश्चित,
उसका जीवन मान मान पर नर के है अवलंबित !
मुक्त हृदय वह स्नेह प्रणय कर सकती नहीं प्रदर्शित,
दृष्टि, स्पर्श संज्ञा से वह हो जाती सहज कलंकित !

योनि नहीं है रे नारी, वह भी मानवी प्रतिष्ठित,
उसे पूर्ण स्वाधीन करो, वह रहे न नर पर अवसित !
द्वन्द्व क्षुधित मानव समाज पशु जग से भी है गर्हित,
नर नारी के सहज स्नेह से सूक्ष्म वृत्ति हो विकसित !

आज मनुज जग से मिट जाए कुत्सित, लिंग विभाजित
नारी नर की निखिल क्षुद्रता, आदिम मानों पर स्थित !
सामूहिक-जन-भाव-स्वास्थ्य से जीवन हो मर्यादित,
नर नारी की हृदय मुक्ति से मानवता हो संस्कृत !

दिसंबर '३९]

द्वन्द्व प्रणय

धिक् रे मनुष्य, तुम स्वच्छ, स्वस्थ, निश्छल चुबन
अकित कर सकते नही प्रिया के अधरो पर ?
मन मे लज्जित, जन से शकित, चुपके गोपन
तुम प्रेम प्रकट करते हो नारो से, कायर !

क्या गुह्य, क्षुद्र ही बना रहेगा, बुद्धिमान !
नर नारी का स्वाभाविक, स्वर्गिक आकर्षण ?
क्या मिल न सकेगे प्राणो से प्रेमार्त प्राण
ज्यो मिलते सुरभि समीर, कुसुम अलि, लहर किरण ?

क्या क्षुधा तृषा औ' स्वप्न जागरण सा सुन्दर
है नही काम भी नैसर्गिक, जीवन द्योतक ?
बन जाता अमृत न देह-गरल छू प्रेम-अधर ?
उज्ज्वल करता न प्रणय सुवर्ण, तन का पावक ?

पशु पक्षी से फिर सीखो प्रणय कला, मानव !
जो आदि जीव, जीवन सस्कारों से प्रेरित,
खग युग्म गान गा करते मधुर प्रणय अनुभव,
मृग मिथुन शृङ्ग से अगों को कर मृदु मर्दित !

मत कहो माँस की दुर्बलता, हे जीव प्रवर !
है पुण्य तीर्थ नर नारी जन का हृदय मिलन,
आनंदित होओ, गर्वित, यह जीवन का वर,
गौरव दो द्वन्द्व प्रणय को, पृथ्वी हो पावन !

१९४०

समर भूमि पर मानव शोणित से रंजित निर्भीक चरण धर
अभिनदित हो दिग् घोषित तोपों के गर्जन से प्रलयकर,
शुभागमन नव वर्ष कर रहा, हालाडोला पर चढ दुर्धर,
बृहद् विमानो के पखों से बरसा कर विष वह्नि निरंतर!

इधर अड़ा साम्राज्यवाद, शत शत विनाश के ले आयोजन,
उधर प्रतिक्रिया रुद्ध शक्तियाँ क्रुद्ध दे रही युद्ध निमत्रण!
सत्य न्याय के बाने पहने, सत्य लुब्ध लड़ रहे राष्ट्रगण,
सिन्धु तरंगों पर उठ गिर क्रय विक्रय स्पर्धा करती नर्तन!

धू-धू करती वाष्प शक्ति, विद्युत ध्वनि करती दीर्ण दिगंतर,
ध्वंस भ्रंश करते विस्फोटक धनिक सभ्यता के गढ जर्जर!
तुमुल वर्ग सघर्ष मे निहित जनगण का भविष्य लोकोत्तर,
इंद्रचाप पुल सा नव वत्सर शोभित प्रलय प्रभ मेघों पर!

आओ हे दुर्धर्ष वर्ष! लाओ विनाश के साथ नव सृजन,
विंश शताब्दी का महान विज्ञान ज्ञान ले, उत्तर यौवन!

जनवरी '४०]

सूत्रधर

तुम धन्य, वस्त्र व्यवसाय कला के सूत्रधार,
बर्बर जन के तन से हर वल्कल चर्म भार,
तुमने आदिम मानव की हर नव द्वन्द्व लाज,
बन शीत ताप हित कवच, बचाया जन समाज!
तकली, चरखे, करघे से अब आधुनिक यंत्र
तुम बने : यत्र बल पर ही मानव लोक तत्र
स्थापित करने को अब · मानवता का विकास
यंत्रों के संग हुआ, सिखलाता नृ-इतिहास!

जड़ नही यन्त्र : वे भाव रूप : संस्कृति द्योतक
वे विश्व शिराएँ, निखिल सभ्यता के पोषक!
रेडियो, तार औ' फोन,—वाष्प, जल वायुयान,
मिट गया दिशावधि का जिनसे व्यवधान मान;—
धावित जिनमे दिशि-दिशि का मन,—वार्ता, विचार,
संस्कृति, संगीत-गगन में झंकृत निराकार!

जीवन सौन्दर्य प्रतीक यत्र · जन के शिक्षक;
युग क्रांति प्रवर्तक औ' भावी के पथ दर्शक!
वे कृत्रिम, निर्मित नही, जगत क्रम में विकसित,
मानव भी यंत्र, विविध युग स्थितियों मे वर्धित!
दार्शनिक सत्य यह नहीं—यत्र जड़, मानवकृत,
वे है अमूर्त : जोवन विकास की कृत्ति निश्चित!

संस्कृति का प्रश्न

राजनीति का प्रश्न नही रे आज जगत के सम्मुख,
अर्थ साम्य भी मिटा न सकता मानव जीवन के दुख!
व्यर्थ सकल इतिहासों, विज्ञानों का सागर मंथन,
वहाँ नही युग लक्ष्मी, जीवन सुधा, इंदु जन मोहन!

आज बृहत् सांस्कृतिक समस्या जग के निकट उपस्थित,
खंड मनुजता को युग युग की होना है नव निर्मित,
विविध जाति, वर्गों, धर्मो, को होना सहज समन्वित,
मध्य युगो की नैतिकता को मानवता मे विकसित!

जग जीवन के अतर्मुख नियमो से स्वय प्रवर्तित;
मानव का अवचेतन मन हो गया आज परिवर्तित,
बाह्य चेतनाओ में उसके क्षोभ, क्रांति, उत्पीड़न,
विगत सभ्यता दत-शून्य फणि सी करती युग नर्तन!

व्यर्थ आज राष्ट्रो का विग्रह, औ' तोपों का गर्जन,
रोक न सकते जीवन की गति शत विनाश आयोजन;
नव प्रकाश में तमस युगो का होगा स्वय निमज्जित,
प्रतिक्रियाएँ विगत गुणों की होगी शनै. पराजित!

जनवरी '४०]

सांस्कृतिक हृदय

कृषि युग से वाहित मानव का सास्कृतिक हृदय
जो गत समाज की रीति नीतियों का समुदय,
आचार विचारो में जो बहु देता परिचय,
उपजाता मन मे सुख - दुख, आशा, भय, संशय;

जो भले बुरे का ज्ञान हमें देता निश्चित
सामत जगत में हुआ मनुज के वह निर्मित !
उन युग स्थितियो का आज दृश्य पट परिवर्तित,
प्रस्तर युग की सभ्यता हो रही अब अवसित !

जो अतर जग था बाह्य जगत पर अवलंबित
वह बदल रहा युगपत् युग स्थितियो से प्रेरित ।
बहु जाति धर्म औ, नीति कर्म में पा विकास
गत सगुण आज लय होने को : औ' नव प्रकाश

नव स्थितियो के सर्जन से हो अब शनैः उदय
बन रहा मनुज की नव आत्मा, सांस्कृतिक हृदय !

फरवरी '४०]

भारत ग्राम

सारा भारत है आज एक रे महा ग्राम !

हैं मान चित्र ग्रामो के, उसके प्रथित नगर
ग्रामीण हृदय मे उसके शिक्षित सस्कृत नर,
जीवन पर जिनका दृष्टिकोण प्राकृत, बर्बर,
वे सामाजिक जन नही, व्यक्ति है अहंकाम !

है वही क्षुद्र चेतना, व्यक्तिगत राग द्वेष,
लघु स्वार्थ व अधिकार सत्व तृष्णा अशेष,
आदर्श, अंध श्वास वही,—हो सभ्यवेश,
संचा त करते जीवन जन का क्षुधा काम !

वे परपरा प्रेमी, परिवर्तन से विभीत,
ईश्वर परोक्ष से ग्रस्त, भाग्य के दास क्रीत,
कुल जाति कीर्ति प्रिय उन्हे, नही मनुजत्व प्रीत,
भव प्रगति मार्ग में उनके पूर्ण घरा विराम !

लौकिक से नही, अलौकिक से है उन्हे प्रीति,
वे पाप पुण्य सत्रस्त, कर्म गति पर प्रतीति,
उपचेतन मन से पीड़ित, जीवन उन्हे ईति,
है स्वर्ग मुक्ति कामना, मर्त्य से नहीं काम !

आदिम मानव करता अब भी जन मे निवास,
सामूहिक सज्ञा का जिसकी न हुआ विकास,
जन जोवी जन दारिद्रच दुख के बने ग्रास,
परवशा यहाँ की चर्म सती ललना ललाम !

जन द्विपद कर सके देश काल को नही विजित,
वे वाष्प वायु यानो से हुए नही विकसित,
वे वर्ग जीव, जिनसे जीवन साधन अधिकृत,
लालायित करते उन्हे वही धन, धरणि धाम !

ललकार रहा जग को भौतिक विज्ञान आज
मानव को निर्मित करना होगा नव समाज,
विद्युत् औ' वाष्प करेगे जन निर्माण काज,
सामूहिक मगल हो समान : समदृष्टि राम !

दिसंबर '३९]

स्वप्न और सत्य

आज भी सुन्दरता के स्वप्न
हृदय में भरते मधु गुञ्जार,
वर्ग कवियो ने जिनको गूँथ
रचा भू स्वर्ग, स्वर्ण ससार !

आज भी आदर्शो के सौध
मुग्ध करते जन मन अनजान,
देश देशो के कालि' दास
गा चुके जिनके गौरव गान !

मुहम्मद, ईसा, मूसा, बुद्ध
केन्द्र संस्कृतियो के, श्री राम,
हृदय में श्रद्धा, सभ्रम, भक्ति
जगाते विकसित व्यक्ति ललाम !

धर्म, बहु दर्शन, नीति, चरित्र
सूक्ष्म चिर का गाते इतिहास,
व्यवस्थाएँ, सस्थाएँ, तत्र
बाँधते मन बन स्वर्णिम पाश !

आज रे, जग जीवन का चक्र
दिशा गति बदल चुका अनिवार,
सिन्धु मे जन युग के उद्दाम
उठ रहा नव्य शक्ति का ज्वार !

आज मानव जीवन का सत्य
धर रहा नए रूप आकार,
आज युग का गुण है—जन-रूप
रूप जन सस्कृति के आधार।

स्थूल, जन आदर्शों की सृष्टि
कर रही नव सस्कृति निर्माण,
स्थूल—युग का शिव, सुन्दर, सत्य
स्थूल ही सूक्ष्म आज, जन-प्राण !

दिसंबर '३९]

बापू !

चरमोन्नत जग में जब कि आज विज्ञान ज्ञान,
बहु भौतिक साधन, यत्र यान, वैभव महान,
सेवक है विद्युत् वाष्प शक्ति : धन बल नितात,
फिर क्यो जग में उत्पीड़न ? जीवन यों अशांत ?

मानव ने पाई देश काल पर जय निश्चय,
मानव के पास नही मानव का आज हृदय !
चर्वित उसका विज्ञान ज्ञान : वह नही पचित .
भौतिक मद से मानव आत्मा हो गई विजित !

है श्लाघ्य मनुज का भौतिक सचय का प्रयास,
मानवी भावना का क्या पर उसमें विकास ?
चाहिये विश्व को आज भाव का नवोन्मेष,
मानव उर में फिर मानवता का हो प्रवेश !

बापू ! तुम पर है आज लगे जग के लोचन,
तुम खोल नही जाओगे मानव के बन्धन ?

दिसंबर '३९]

अहिंसा

बन्धन बन रही अहिंसा आज जनो के हित,
वह मनुजोचित निश्चित, कब ? जब जन हो विकसित !
भावात्मक आज नही वह; वह अभाव वाचक :
उसका भावात्मक रूप प्रेम केवल सार्थक !

हिंसा विनाश यदि, नही अहिंसा मात्र सृजन,
वह लक्ष्य शून्य अब : भर न सकी जन में जीवन;
निष्क्रिय : उपचेतन ग्रस्त एक देशीय परम,
सांस्कृतिक प्रगति से रहित आज जन हित दुर्गम !

है सृजन विनाश सृष्टि के आवश्यक साधन
यह प्राणि शास्त्र का सत्य नही, जीवन दर्शन !
इस द्वन्द्व जगत में द्वन्द्वातीत निहित सगति,
है जीव जीव का जीवन,—रोक न सका प्रगति !

भव तत्व प्रेम : साधन है उभय विनाश सृजन,
साधन बन सकते नही सृष्टि गति में बन्धन !

फरवरी '४०]

पतझर

झरो, झरो, झरो !
जंगम जग प्रागण में,
जीवन संघर्षण मे
नव युग परिवर्तन मे
मन के पीले पत्तो !
झरो, झरो, झरो !

सन् सन् शिशिर समीरण
देता क्रांति निमंत्रण !
यही जीवन विस्मृति क्षण,—
जीर्ण जगत के पत्तो !
टरो, टरो, टरो !

कँप कर, उड कर, गिर कर,
दब कर, पिस कर, चर मर,
मिट्टी में मिल निर्भर,
अमर बीज के पत्तो !
मरो, मरो, मरो !

तुम पतझर, तुम मधु—जय !
पीले दल, नव किसलय,

तुम्ही सृजन, वर्धन, लय,
आवागमनी पत्तो !
सरो, सरो, सरो !

जाने से लगता भय ?
जग में रहना सुखमय ?
फिर आओगे निश्चय !
निज चिरत्व से पत्तो !
डरो, डरो, डरो !

जन्म मरण से होकर,
जन्म मरण को खोकर,
स्वप्नो में जग सोकर,
मधु पतझर के पत्तो !
तरो, तरो, तरो !

फरवरी '४०]

उद्‌बोधन

खोलो वासना के वसन,
नारी नर !

वाणी के बहु रूप, बहु वेश, बहु विभूषण
खोलो सब, बोलो सब
एक वाणी,—एक प्राण, एक स्वर!
वाणी केवल भावो—विचारो की वाहन,
खोलो भेद भावना के मनोवसन
नारी नर !

खोलो जीर्ण विश्वासो, संस्कारो के शीर्ण वसन,
रूढियो रीतियो, आचारो के अवगुठन,
छिन्न करो पुराचीन संस्कृतियो के जड़ बधन,—
जाति वर्ण, श्रेणि वर्ग से विमुक्त जन नूतन
विश्व सभ्यता का शिलान्यास करें भव शोभन,
देश राष्ट्र मुक्त धरणि पुण्य तीर्थ हो पावन!
मोह पुरातन का वासना है, वासना दुस्तर,
खोलो सनातनता के शुष्क वसन,
नारी नर !

समरांगण बना आज मानव उपचेतन मन,
नाच रहे युग युग के प्रेत जहाँ छाया-तन;

धर्म वहाँ, कर्म वहाँ, नीति रीति, रूढ़ि चलन,
तर्क वाद, सत्य न्याय, शास्त्र वहाँ, षड् दर्शन;
खण्ड खण्ड में विभक्त विश्व चेतना प्रांगण,
भित्तियाँ खड़ी है वहाँ देश काल की दुर्धर!
ध्वस करो, भ्रश करो, खँडहर हैं ये खँडहर,
खोलो विगत सभ्यता के क्षुद्र वसन
नारी नर !

नव चेतन मनुज आज करें धरणि पर विचरण,
मुक्त गगन में समूह शोभन ज्यो तारागण;
प्राणो प्राणों में रहे ध्वनित प्रेम का स्पंदन,
जन से जन मे रे बहे, मन से मन मे जीवन;
मानव हो मानव—हो मानव मे मानवपन
अन्न वस्त्र से प्रसन्न, शिक्षित हो सर्व जन,
सुन्दर हो वेश, सब के निवास हो सुन्दर,
खोलो परपरा के कुरूप वसन,
नारी नर !

दिसंबर '४०]

नव इन्द्रिय

नव जीवन की इंद्रिय दो हे, मानव को,
नव जीवन की नव इंद्रिय,
नव मानवता का अनुभव कर सके मनुज
नव चेतनता से सक्रिय !

स्वर्ग खंड इस पुण्य भूमि पर
प्रेत युगो के करते तांडव,
भव मानव का मिलन तीर्थं
बन रहा रक्त चंडी का रौरव !

अनिर्वाप्य साम्राज्य लालसा
अगणित नर आहुति देती नव,
जाति वर्ग औ' देश राष्ट्र में
आज छिड़ा प्रलयकर विप्लव !

नव युग की नव आत्मा दो पशु मानव को,
नव जीवन की नव इंद्रिय,
भव मानवता का साम्राज्य बने भू पर
दस दिशि के जनगण को प्रिय !

दिसंबर '३६]

कवि किसान

जोतो हे कवि, निज प्रतिभा के
फल मे निष्ठुर मानव अतर,
चिर जीर्ण विगत की खाद डाल,
जन-भूमि बनाओ सम सुदर!

बोओ, फिर जन मन में बोओ,
तुम ज्योति पख नव बीज अमर,
जग जीवन के अंकुर हँस हँस
भू को हरीतिमा से दे भर!

पृथ्वी से खोद निराओ, कवि,
मिथ्या विश्वासो के तृण खर,
सीचो अमृतोपम वाणी की
धारा से मन, भव हो उर्वर।

नव मानवता का स्वर्ण-शस्य-
सौन्दर्य लुनाओ जन-सुखकर,
तुम जग गृहिणी, जोवन किसान,
जन हित भडार भरो निर्भर।

जनवरी '४०]

वाणी !

तुम वहन कर सको जन मन मे मेरे विचार,
वाणी मेरी, चाहिए तुम्हे क्या अलकार !

भव कर्म आज युग की स्थितियो से है पीड़ित,
जग का रूपांतर भी जनैक्य पर अवलबित,

तुम रूप कर्म से मुक्त, शब्द के पंख मा॰
कर सको सुदूर मनोनभ मे जन के विहार
वाणी मेरी, चाहिए तुम्हे क्या अलंकार !

चित् शून्य,—आज जग, नव निनाद से हो गुजित,
मन जड़,—उसमें नव स्थितियो के गुण हों जागृत,

तुम जड चेतन की सीमाओ के आर पार
झंकृत भविष्य का सत्य कर सको स्वराकार,
वाणी मेरी, चाहिए तुम्हे क्या अलकार !

युग कर्म शब्द, युग रूप शब्द, युग सत्य शब्द,
शब्दित कर भावी के सहस्र शत मूक अब्द,

ज्योतित कर जन मन के जीवन का अंधकार,
तुम खोल सको मानव उर से निःशब्द द्वार,
वाणी मेरी चाहिए तुम्हे क्या अलंकार !

फरवरी '४०]

नक्षत्र

[अपनी कॉटेज के प्रति]

मेरे निकुज, नक्षत्र वास !
इस छाया मर्मर के वन में
तू स्वप्न नीड़ सा निर्जन में
हे बना प्राण पिक का विलास !

लहरी पर दीपित ग्रह समान
इस भू उभार पर भासमान,
तू बना मूक चेतनावान
पा मेरे सुख दुख, भाव' च्छ्वास !

आती जग की छवि स्वर्ण प्रात,
स्वप्नो की नभ सी रजत रात,
भरती दश दिशि की चारवात
तुझमे वन वन की सुरभि साँस !

कितनी आशाएँ मनोल्लास,
संकल्प महत् उच्चाभिलाष,
तुझमें प्रतिक्षण करते निवास,—
है मौन श्रेय साधन प्रयास !

तू मुझे छिपाए रह अजान
निज स्वर्ण मर्म में खग समान,
होगा अग जग का कंठ गान
तेरे इन प्राणो का प्रकाश !
मेरे निकुज, नक्षत्र वास !

आँगन से

रोमांचित हो उठे आज नव वर्षा के स्पर्शो से !
छोटे से आँगन मेरे, तुम रीते थे वर्षो से !
नव दूर्वा के हरे प्ररोहो मे अब भरे मनोहर
मरकत के टुकड़े से लगते तुम विजडित भू उर पर !

जन निवास से दूर, नीड़ में वन तरुओ के छिपकर,
भू उरोज-से उभरे इस एकांत मौन भीटे पर
कोमल शाद्वल अंचल पर लेटा मै स्मित चिन्तनपर,
जीवन की हँसमुख हरीतिमा को देखूँ आँखे भर !

एक ओर गहरी खाई मे सोया तरुओ का तम
केका रव से चकित, बखेरे सुख स्वप्नो का सभ्रम !
और दूसरी ओर मंजरित आम्र विपिन कर मुखरित
मधु में पिक, पावस में पी-खग करे हृदय को हर्षित !

हरित भरित वन नीम उच्छ्वसित शाखाओ का विह्वल
वक्षभार, हाँ, रहे झुकाए मेरे ऊपर कोमल !

अगस्त '३६]

याद

विदा हो गई साँझ, विनत मुख पर झीना आँचल धर,
मेरे एकाकी आँगन मे मौन मधुर-स्मृतियाँ भर!
वह केसरी दुकूल अभी भी फहरा रहा क्षितिज पर,
नव असाढ के मेघो से घिर रहा बराबर अंबर!

मै बरामदे में लेटा, शय्या पर, पीड़ित अवयव,
मन का साथी बना बादलों का विषाद है नीरव!
सक्रिय यह सकरुण विषाद,—मेघो से उमड उमडकर
भावी के बहु स्वप्न, भाव बहु व्यथित कर रहे अतर!

मुखर विरह दादुर पुकारता उत्कठित भेकी को,
बर्हभार से मोर लुभाता मेघ-मुग्ध केकी को,
आलोकित हो उठता सुख से मेघो का नभ चचल,
अतरतम मे एक मधुर स्मृति जग जग उठती प्रतिपल!

कपित करता वक्ष धरा का घन गभीर गर्जन स्वर,
भू पर ही आ गया उतर शत धाराओ मे अबर!
भीनी भीनी भाप सहज ही साँसो मे घुलमिल कर
एक और भी मधुर गध से हृदय दे रही है भर!

नव असाढ की सध्या म, मेघो के तम मे कोमल,
पीड़ित एकाकी शय्या पर, शत भावों में विह्वल,
एक मधुरतम स्मृति पल भर विद्युत सी जलकर उज्ज्वल
याद दिलाती मुझे हृदय में रहती जो तुम निश्चल!

गुलदावदी

शय्या ग्रस्त रहा मै दो दिन, फूलदान में हँसमुख
चद्र मल्लिका के फूलो को रहा देखता सम्मुख!
गुलदावदी कहूँ,—कोमलता की सीमा ये कोमल!
शैशव स्मिति इनमे जीवन की भरी स्वच्छ, सद्योज्वल!

पुज पुज उल्लास, लीन लावण्य राशि मे अपने,
मृदु पखडियों के पलको पर देख रहा हो सपने!
उज्ज्वल सूरज का प्रकाश, ज्योत्स्ना भी उज्ज्वल, शीतल,
उज्ज्वल सौरभ-अनिल, और उज्ज्वल निर्मल सरसी जल;

इन फूलो को उज्ज्वलता छू लेती अन्तर के स्तर,
मधुर अवयवो मे बँध वह ज्यो हो आ गई निकटतर!
मृदुल दलों के अगजाल से फूट त्वचा-कोमल सुख
सहृदय मानवीय स्पर्शो से हर लेता मन का दुख!

तृण तृण में औ' निखिल प्रकृति मे जीवन की है क्षमता,
पर मानव का हृदय लुभाती मानव करुणा ममता!

दिसंबर '३९]

विनय

विज्ञान ज्ञान बहु सुलभ, सुलभ बहु नीति धर्म
संकल्प कर सके जन, इच्छा अनुरूप कर्म !
उपचेतन मन पर विजय पा सके चेतन मन,
मानव को दो यह शक्ति : पूर्ण जग के कारण !

मनुजों की लघु चेतना मिटे, लघु अहंकार,
नव युग के गुण से विगत गुणो का अधकार !
हो शांत जाति विद्वेष, वर्ग गत रक्त समर,
हों शांत युगो के प्रेत, मुक्त मानव अंतर !

संस्कृत हों सब जन, स्नेही हों, सहृदय, सुन्दर,
संयुक्त कर्म पर हो सयुक्त शिव निर्भर।
राष्ट्रों से राष्ट्र मिले, देशों से देश आज,
मानव से मानव,—हो जीवन निर्माण काज !

हो धरणि जनों की, जगत् स्वर्ग,—जीवन का घर,
नव मानव को दो, प्रभु ! भव-मानवता का वर !

फरवरी '४०]